उपपाठ पुस्तक

कक्षा

10

नवरत्न

TB/X/2003/400(HS)

STATE COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

2003

Price Rs. 5.00

TB|X|2003|400(H)

नवरत्न

उपपाठ पुस्तक

कक्षा 10

शिक्षा विभाग

केरल सरकार

2003

Price Rs. 5.00

Prepared By :

State Council of Educational Research and Training (SCERT)

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद

©
Government of Kerala
2003

प्रतिज्ञा

भारत मेरा देश है, सभी भारतीय मेरे भाई-बहन हैं। मुझे अपने देश से प्रेम है और उसकी सम्पन्न और विविध परम्परा पर गर्व है।

उसके योग्य होने के लिए मेरा प्रयत्न जारी रहेगा। अपने माता-पिता, गुरु तथा अग्रज मेरे आदरणीय होंगे और उनसे मेरा व्यवहार सम्मानपूर्ण होगा।

मेरी प्रतिज्ञा है कि अपने देश और जनता के प्रति मेरी श्रद्धा अटल रहेगी। उनकी उन्नति और समृद्धि पर ही मेरा सुख निर्भर है।

जय हिन्द !

राष्ट्र-गीत

जनगण मन अधिनायक जय हे,
भारत भाग्य विधाता।
पंजाब सिंध गुजरात मराठा,
द्राविड़ उत्कल बंगा।
विंध्य हिमाचल यमुना गंगा,
उच्छल जलधि तरंगा।
तव शुभ नामे जागे,
तव शुभ आशिष माँगे,
गाहे तव जय-गाथा।
जनगण मंगलदायक जय हे,
भारत भाग्य विधाता।
जय हे, जय हे, जय हे,
जय जय जय, जय हे ।

प्राक्कथन

'नवरत्न' नामक यह उपपाठ पुस्तक दसवीं कक्षा के लिए तैयार की गयी है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इसमें नौ कहानियाँ संग्रहित हैं, हाँ 'नवरत्न' ही हैं। आठ कहानियाँ हिन्दी के उच्चकोटि के कहानीकारों की हैं। परन्तु 'काबुलीवाला' बंगाली का हिन्दी अनुवाद है। इसकी प्रत्येक कहानी के चयन में हमने इस बात का ध्यान अवश्य रखा है कि छात्रों को उससे कोई न कोई जीवनोपयोगी महान सन्देश प्राप्त हो। विषय-वस्तु की विविधता और भाषा-शैली की रोचकता का भी हमने ध्यान रखा है।

छात्रों को प्रत्येक वर्ष 'नवरत्न' की सिर्फ सात कहानियाँ पढ़नी होंगी। ये सात कहानियाँ कौन-कौन-सी हों, इस विषय में केरल सरकार का शिक्षा विभाग समय-समय पर अनुदेश देगा।

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद के तत्वावधान में जिन विद्वानों ने प्रस्तुत पुस्तक का संकलन किया है, उन सबके हम आभारी हैं। जिन कहानीकारों और प्रकाशकों ने इन रचनाओं को सम्मिलित करने की अनुमति दी है, उनके हम कृतज्ञ हैं।

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद।

निदेशक

अध्यापकों से

पाठ्य पुस्तक के अध्ययन से छात्रों को सक्रिय शब्दावली का प्रयोगात्मक परिचय मिलता है। पाठ्य पुस्तक में सीखी हुई शब्दावली के अभ्यास का अवसर अपठित पुस्तक में प्राप्त होता है। अपठित पुस्तक के अध्ययन से छात्रों में अर्थग्रहण करने की क्षमता बढ़ती है। वाचन की गति भी बढ़ती है। उपपाठ पुस्तक के लिए छात्रों की रुचि के अनुसार कहानी, जीवनी, संस्मरण आदि विषय ले सकते हैं। अतः उपपाठ पुस्तक के अध्ययन से विषयगत रसास्वादन करने का भी अवसर मिलता है। वास्तव में स्वाध्याय की आदत बढ़ाना ही उप-पाठ पुस्तक के अध्ययन का उद्देश्य है। इससे कक्षा के बाहर की कुछ किताबें भी पढ़ने की आदत छात्रों में पड़ जाएगी।

उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट होता है कि उप-पाठ पुस्तक गहन शिक्षण के लिए निर्धारित नहीं है। फिर भी हिन्दी अन्य भाषा होने के कारण उप-पाठ पुस्तक के अध्ययन में एक हद तक छात्रों को दिक्कत का अनुभव होने की संभावना है। इसलिए कक्षा में इसके अध्ययन के लिए निम्नलिखित सोपानों का पालन कर सकते हैं ।

1. एक छोटा सा उपक्रम।
2. पात्र-परिचय, नाम, देश, काल आदि का परिचय दें।
3. छात्रों दवारा मौनवाचन।
4. छात्रों दवारा नाटकीय वाचन।
5. विद्यार्थियों की शंकाओं का समाधान।
6. अर्थ ग्रहण के प्रश्न।
7. गृहकार्य।

प्रस्तुत पाठ्य पुस्तक 'नवरत्न' में नौ कहानियाँ दी गयी हैं । छात्रों के स्तर को ध्यान में रखकर नये शब्दों के अर्थ भी दिये गये हैं। प्रत्येक पाठ के अन्त में कुछ संभावित प्रश्न दिये गये हैं। इन प्रश्नों के नमूने पर दूसरे प्रश्न भी पूछे जा सकते हैं। लेकिन प्रश्न निर्माण में इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि कहानी पढ़ने से प्रश्न का सीधा उत्तर मिले।

आशा है, अध्यापक, छात्र और अन्य हिन्दि-प्रेमी इस संकलन का सहर्ष स्वागत करेंगे और इसका पूरा लाभ उठाएँगे।

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद – केरल।

निदेशक

विषय-सूची

क्रम संख्या	पाठ		पृष्ठ संख्या	कालांश
1.	ममता — जयशंकर प्रसाद	..	1	4
2.	लाल अंगारों की मुस्कान — कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	..	4	3
3.	परीक्षा –प्रेमचन्द	..	7	4
4.	लड़की — रामदरश मिश्र	..	10	3
5.	चीफ़ की दावत — भीष्म साहनी	..	13	4
6.	काबुलीवाला — रवीन्द्रनाथ ठाकुर	..	19	3
7.	स्नेह का दण्ड — श्रीमती लज्जा धवन	..	22	3
8.	भोलाराम का जीव — हरिशंकर परसाई	..	26	3
9.	दूसरी सुबह — गोविन्द मिश्र	..	30	3

1 ममता

(1)

रोहतास-दुर्ग के प्रकोष्ठ में बैठी हुई युवती ममता, शोण के तीक्ष्ण गंभीर प्रवाह को देख रही है। ममता विधवा थी। उसका यौवन शोण के समान ही उमड़ रहा था। मन में वेदना, मस्तक में आँधी, आँखों में पानी की बरसात लिए, वह सुख के कंटक-शयन में विकल थी। वह रोहतास-दुर्गपति के मंत्री चूड़ामणि की अकेली दुहिता थी, फिर उसके लिए कुछ अभाव होना असंभव था, परन्तु वह विधवा थी, — हिन्दू विधवा संसार में सबसे तुच्छ निराश्रय है — तब उसकी विडम्बना का कहाँ अंत था!

चूड़ामणि ने चुपचाप उसके प्रकोष्ठ में प्रवेश किया। शोण के प्रवाह में, उसके कल-नाद में अपना जीवन मिलाने में वह बेसुध थी। पिता का आना न जान सकी। चूड़ामणि व्यथित हो उठे। स्नेहपालिता पुत्री के लिए क्या करें, वह स्थिर न कर सकते थे। लौटकर बाहर चले गये। ऐसा प्रायः होता, पर आज मंत्री के मन में बड़ी दुश्चिन्ता थी। पैर सीधे न पड़ते थे।

एक पहर बीत जाने पर वे फिर ममता के पास आये। उस समय उनके पीछे दस सेवक चाँदी के बड़े थालों में कुछ लिए हुए खड़े थे; कितने ही मनुष्यों के पद-शब्द सुन ममता ने घूमकर देखा। मंत्री ने सब थालों को रखने का संकेत किया। अनुचर थाल रखकर चले गये। ममता ने पूछा –"यह क्या है पिताजी?"

"तेरे लिए बेटी, उपहार है।" कहकर चूड़ामणि ने उसका आवरण उलट दिया। स्वर्ण का पीलापन उस सुनहली संध्या में विकीर्ण होने लगा। ममता चौंक उठी –

"इतना स्वर्ण! यह कहाँ से आया ?"

"चुप रहो ममता, यह तुम्हारे लिए है।"

"तो क्या आप ने शत्रु का उत्कोच स्वीकार कर लिया? पिताजी, यह अनर्थ है, अर्थ नहीं है। लौटा दीजिए। पिताजी, हम लोग ब्राह्मण हैं, इतना सोना लेकर क्या करेंगे?"

"इस पतनोन्मुख प्राचीन सामंत वंश का अंत समीप है, बेटी! किसी भी दिन शेरशाह रोहिताश्व पर अधिकार कर सकता है, उसदिन मंत्रीत्व न रहेगा, तब के लिए बेटी!"

"हे भगवान्! तब के लिए! विपद के लिए! इतना आयोजन! परम पिता की इच्छा के विरुद्ध इतना साहस! पिताजी क्या भीख न मिलेगी? क्या कोई हिंदू भू-पृष्ठ पर न बचा रह जाएगा, जो ब्राह्मण को दो मुट्ठी अन्न दे सके? यह असंभव है। फेर दीजिए पिताजी, मैं काँप रही हूँ — इसकी चमक आँखों को अंधा बना रही है!"

"मूर्ख है," कहकर चूड़ामणि चले गये।

दूसरे दिन जब डोलियों का ताँता भीतर आ रहा था, ब्राह्मण- मंत्री चूड़ामणि का हृदय धक-धक करने लगा। वह अपने को रोक न सका। उसने जाकर रोहिताश्व-दुर्ग के तोरण पर डोलियों का आवरण खुलवाना चाहा। पठानों ने कहा - "यह महिलाओं का अपमान करना है।"

बात बढ़ गयी, तलवारें खिंचीं; ब्राह्मण वहीं मारा गया और राजा-रानी और कोष सब छली शेरशाह के हाथ पड़े; निकल गयी ममता। डोलियों में भरे हुए पठान सैनिक दुर्ग-भर में फैल गये, पर ममता न मिली।

(2)

काशी के उत्तर में धर्मचक्र विहार मौर्य और गुप्त सम्राटों की कीर्ति का खंडहर था। भग्न चूड़ा, तृण-गुल्मों से ढके हुए प्राचीर ईंटों के ढेर में बिखरी हुई भारतीय शिल्प की विभूति, ग्रीष्म रजनी चंद्रिका में अपने को शीतल कर रही थी।

जहाँ पंचवर्गीय भिक्षु गौतम का उपदेश ग्रहण करने के लिए पहले मिले थे, उसी स्तूप के भग्नावशेष की मलिन छाया में एक झोंपड़ी के दीपालोक में एक स्त्री पाठ कर रही थी —

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्य्युपासते . . . . ."

पाठ रुक गया। एक भीषण और हताश आकृति दीप के मन्द प्रकाश में सामने खड़ी थी। स्त्री उठी, उसने कपाट बंद करना चाहा। परंतु उस व्यंक्ति ने कहा, "माता मुझे आश्रय चाहिए।"

"तुम कौन हो?" स्त्री ने पूछा।

"मैं मुगल हूँ। चौसा-युद्ध में शेरशाह से विपन्न होकर रक्षा चाहता हूँ। इस रात अब आगे चलने में असमर्थ हूँ।"

"क्या शेरशाह से?" स्त्री ने अपने ओंठ काट लिये। "हाँ माता!"

"परन्तु तुम भी वैसे ही क्रूर हो, वही भीषण रक्त की प्यास, वही निष्ठूर प्रतिबिंब तुम्हारे मुख पर भी है। सैनिक, मेरी कुटी में स्थान नहीं, जाओ कहीं दूसरा आश्रय खोज लो।"

"गला सूख रहा है, साथी छूट गए हैं, अश्व गिर पड़ा है — इतना थका हुआ हूँ — इतना!" कहते-कहते वह व्यक्ति धम से बैठ गया और उसके सामने ब्रह्मांड घूमने लगा। स्त्री ने सोचा, यह विपत्ति कहाँ से आई। उसने जल दिया, मुगल के प्राणों की रक्षा हुई। वह सोचने लगी — 'सब विधर्मी दया के पात्र नहीं — मेरे पिता का वध करने वाले आततायी।' घृणा से उसका मन विरक्त हो गया।

स्वस्थ होकर मुगल ने कहा – "माता, तो फिर मैं चला जाऊँ?"

स्त्री विचार कर रही थी — 'मैं ब्राह्मणी हूँ, मुझे तो अपने धर्म — अतिथि देव की उपासना — का पालन करना चाहिए। परन्तु यहाँ - - - - - - - - नहीं नहीं, सब विधर्मी दया के पात्र नहीं। परंतु यह दया तो नहीं - - - - - - - - कर्तव्य करना है। तब?'

मुगल अपनी तलवार टेककर उठ खड़ा हुआ। ममता ने कहा – "क्या आश्चर्य है कि तुम भी छल करो?"

"छल! नहीं, तब नहीं स्त्री! जाता हूँ, तैमूर का वंशधर स्त्री से छल करेगा? जाता हूँ। भाग्य का खेल है।"

ममता ने मन में कहा — यहाँ कौन दुर्ग है! यही झोंपड़ी न, जो चाहे ले ले, मुझे तो अपना कर्तव्य करना पड़ेगा। — वह बाहर चली और मुगल से बोली — "जाओ भीतर, थके हुए भयभीत पथिक! तुम चाहे कोई हो, मैं तुम्हें आश्रय देती हूँ। मैं ब्राह्मण कुमारी हूँ, सब अपना धर्म छोड़ दें, तो मैं भी क्यों छोड़ दूँ?" मुगल ने चंन्द्रमा के मंद प्रकाश में वह महिमामय मुखमंडल देखा, उसने मन-ही-मन नमस्कार किया। ममता पास की टूटी हुई दीवारों में चली गयी। भीतर थके पथिक ने झोंपड़ी में विश्राम किया।

* * *

प्रभात में खंडहर की संधि से ममता ने देखा, सैकड़ों अश्वारोही उस प्रांत में घूम रहे हैं। वह अपनी मूर्खता पर अपने को कोसने लगी।

अब उस झोंपड़ी से निकलकर उस पथिक ने कहा — "मिरज़ा, मैं यहाँ हूँ।"

शब्द सुनते ही प्रसन्नता की चीत्कार ध्वनि से वह प्रांत गूंज उठा। ममता अधिक भयभीत हुई। पथिक ने कहा — "वह स्त्री कहाँ है? उसे खोज निकालो।" ममता छिपने के लिए अधिक सचेष्ट हुई। वह मृग-दाव में चली गयी। दिन-भर उसमें से न निकली। संध्या में जब उन लोगों के जाने का उपक्रम हुआ तो ममता ने सुना, पथिक घोड़े पर सवार होते हुए कह रहा है — मिरज़ा, उस स्त्री को मैं कुछ दे न सका। उसका घर बनवा देना, क्योंकि मैं ने विपत्ति में यहाँ विश्राम पाया था। यह स्थान भूलना मत।" इसके बाद वे चले गये।

* * *

चौसा के मुगल-पठान युद्ध को बहुत दिन बीत गये। ममता अब सत्तर वर्ष की वृद्धा है। वह अपनी झोंपड़ी में एक दिन पड़ी थी। शीतकाल का प्रभाव था। उसका जीर्ण कंकाल खाँसी से गूंज रहा था। ममता की सेवा के लिए गाँव की दो-तीन स्त्रियाँ उसे घेर कर बैठी थीं, क्योंकि वह आजीवन सब के सुख-दुख की समभागिनी रही थी।

ममता ने जल पीना चाहा, एक स्त्री ने सीपी से जल पिलाया। सहसा एक अश्वारोही उसी झोंपड़ी के द्वार पर दिखाई पड़ा। वह अपनी धुन में कहने लगा — "मिरज़ा ने जो चित्र बनाकर दिया है, वह तो इसी जगह का होना चाहिए। वह बुढ़िया मर गयी होगी, अब किस से पूछूँ कि

एक दिन शहंशाह हुमायूँ किस छप्पर के नीचे बैठे थे ? यह घटना भी तो सैंतालीस वर्ष से ऊपर की हुई।"

ममता ने अपने विकल कानों से सुना। उसने पास की स्त्री से कहा — "उसे बुलाओ।"

अश्वारोही पास आया। ममता ने रुक-रुक कर कहा — "मैं नहीं जानती कि वह शहंशाह था या साधारण मुगल, पर एक दिन इसी झोंपड़ी के नीचे वह रहा। मैं ने सुना था कि वह मेरा घर बनवाने की आज्ञा दे चुका था। मैं आजीवन अपनी झोंपड़ी कुदवाने के डर से भयभीत ही थी। भगवान ने सुन लिया, मैं आज इसे छोड़े जाती हूँ अब तुम इसका मकान बनाओ या महल, मैं अपने चिर-विश्राम गृह में जाती हूँ।"

वह अश्वारोही अवाक् खड़ा था। बुढ़िया के प्राण-पक्षी अनंत में उड़ गये।

* * *

वहाँ एक अष्टकोण मन्दिर बना और उस पर शिलालेख लगाया गया —

'सातों देश के नरेश हुमायूँ ने एक दिन यहाँ विश्राम किया था। उनके पुत्र अकबर ने उनकी स्मृति में यह गगनचुम्बी मंदिर बनाया।

पर उसमें ममता का कहीं नाम नहीं।

अभ्यास

शब्दार्थ :—

दुहिता	=	पुत्री
विडंबना	=	निंदा
उत्कोच	=	കൈക്കൂലി, bribe, रिश्वत
विपद	=	विपत्ति
डोली	=	स्त्रियों की पालकी
प्राचीर	=	किला आदि के चारों ओर रक्षा के लिए बनायी गयी दीवार
विपन्न	=	संकटग्रस्त
छल	=	कपट
पथिक	=	यात्री
मृगदाव	=	काशी के पास सारनाथ नामक स्थान, मृगों का वन
कंगाल	=	गरीब
छप्पर	=	മേൽക്കൂര, Roof
शाहंशाह	=	सम्राट
तोरण	=	बाहरी दरवाज़ा
चौसा युद्ध	=	26 जून 1539 ई. में बक्सर के समीप चौसा नामक स्थान पर शेरशाह और हुमायूँ के बीच में युद्ध हुआ। इस युद्ध में हुमायूँ पराजित हुआ।

प्रश्न :—

1. ममता कौन थी और उसकी हालत कैसी थी ?
2. चूड़ामणि क्यों व्यथित हो उठे ?
3. ममता क्यों चौंक उठी ?
4. चूड़ामणि ने स्वर्ण लाने का क्या तर्क दिया ?
5. चूड़ामणि कैसे मारे गये ?
6. ममता मुगल को आश्रय देना नहीं चाहती थी। क्यों ?
7. हुमायूँ ने ममता की झोंपड़ी से जाते वक्त सिपाहियों से क्या कहा ?
8. हुमायूँ की इच्छा की पूर्ति के लिए अकबर ने क्या किया ?
9. म्लेच्छ के उत्कोच को अस्वीकार करके ममता ने पिताजी से क्या कहा ?

○

2 लाल अंगारों की मुस्कान

"मैं आपकी शरण आया हूँ, महाराज !"

रणथंभोर के राणा हमीर अपने दरबार में बैठे अपना राज-काज देख रहे थे कि किसी ने पुकारा "मैं आपकी शरण आया हूँ, महाराज !"

हमीर ने आँखें ऊपर कीं तो देखा कि एक बहादुर मुसलमान उनके सामने था। सिर उसका झुका हुआ और गला व्यथा से भर्राया हुआ ।

"कौन हो तुम"? हमीर ने पूछा।

"महाराज मैं दुखिया हूँ, मेरे प्राण संकट में हैं, आपकी शरण आया हूँ।" मेरा नाम माहमशाह, काम सिपहगिरि, बादशाह अलाउद्दीन ख़िलजी का खादिम। एक मामूली बात पर बादशाह नाराज़ हो गए और मेरे लिए फाँसी का हुक्म दे दिया। वे घड़ियाँ नज़दीक थीं, जब फाँसी का फंदा दम घोट देता और मेरी लाश को चील और कुत्तों के लिए फेंक दिया जाता कि मैं जेल से फ़रार हो गया और अब अपने प्राणों की रक्षा के लिए आपकी शरण में हाज़िर हूँ। मेरी रक्षा कीजिए महाराज !"

हमीर ने गौर से माहमशाह को देखा। माहम बहुत घबराया हुआ था। "दिल्ली और रणथंभोर के बीच तो राजपूतों के कई राज्य हैं, तुम उनमें क्यों नहीं गए, माहम?" हमीर ने गंभीरता से पूछा ।

और भी दीन होकर माहम ने कहा, "महाराज, मैं सबके दरवाज़े गया, सब ने मुझे सहानुभूति दीं, पर कोई शरण न दे सका, क्योंकि मैं दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ख़िलजी का भगोड़ा हूँ और मुझे शरण देकर कोई उन्हें नाराज़ नहीं करना चाहता।"

हमीर ने अपने सलाहकारों को देखा और अनुत्साहित पाया। उनकी राय थी, "महाराज, माहमशाह की तलवार आज आपकी शरण में है, पर कल तक वह हमारे खून की प्यासी थी। हम उसे अपनी छाया में लेकर दिल्ली के तख़्त की लपलपाती क्रोधाग्नि को न्योता क्यों दें?"

यह दिल्ली के तख़्त की लपलपाती क्रोधाग्नि को न्योता देने की बात नहीं है, सरदारों ! यह कर्तव्य का प्रश्न है, आन का प्रश्न है। जब माहम इस द्वार से लौटेगा, तो स्वर्ग में हमारे पूर्वज क्या सोचेंगे? क्या उन्हें स्वर्ग के सुख-साज में काँटों की चुभन का अनुभव न होगा?" हमीर ने आवेश में पूछा।

सरदारों ने कहा, "क्षमा करें महाराज। आपकी बात परम पवित्र है, पर कर्तव्य की भी एक सीमा है।"

"कर्तव्य की सीमा?" कड़क कर हमीर ने पूछा, "कर्तव्य की सीमा है कर्तव्य, और कर्तव्य की सीमा है कर्तव्य-पालन। कर्तव्य के पालन में सुख मिलेगा या दुःख, जय होगी या पराजय, यह दुकानदारी की वृत्ति राजपूतों को शोभा नहीं देती। माहम शरणार्थी है, शरणार्थी की रक्षा राजपूत का कर्तव्य है। यह कर्तव्य हमें पूरा करना है, फिर इससे दिल्ली का बादशाह नाराज़ हो या दुनिया का बादशाह।"

सामंत-सरदार भी अब महाराज की भावधारा में बहकर व्यवहार - बुद्धि से दूर, भावना के क्षेत्र में पहुँच गए थे। उनके मुँह से निकला, धन्य महाराज !"

हमीर ने कहा, "माहमशाह रणथंभोर अब तुम्हारा घर है। आराम से यहाँ रहो और विश्वास रखो कि अब किसी की हिम्मत नहीं कि तुम्हारी तरफ़ तिरछी आँखों से देखे। कोई कष्ट हो तो हमें कहना, जाओ।"

कानोंकान यह उड़ती खबर दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ख़िलजी तक पहुँची, तो वह तमतमा उठा, "हमीर की यह हिमाकत कि मेरे चोर को आसरा दे।"

"क्या तुम नहीं जानते हमीर ! जो तुम ने माहम को अपनी छत दी? खैर, मैं भूलों को माफ़ करना चाहता हूँ। कोई बात नहीं, माहम को अपनी देख-रेख में मेरे सुपुर्द

करो और अपने कसूर की माफ़ी माँगो।" अलाउद्दीन का यह संदेश हमीर के पास पहुँचा तो वह मुसकराया। उसने लिखा, "माहम को शरण दी है, कोई नौकर नहीं रखा और अपना सर्वस्व लुटाकर भी शरणागतों की रक्षा करना मेरी जाति के संस्कार है। सपने में भी उम्मीद न रखिए कि माहम को मैं आपके दरवाज़ा लाऊँगा। अब जो मुनासिब समझें, कीजिए।"

जवाब क्या था, एक पलीता था, जिसने ख़िलजी के बारूद में आग लगा दी और उसने कुछ दिन बाद ही अपनी फ़ौजों के साथ रणथंभोर का किला घेर लिया।

"लडाई-झगडे से क्या फ़ायदा, हमीर! ला माहम को मुझे सौंप दे।" खिलजी का यह आख़िरी संदेश था।

"लडाई से मैं नहीं डरता और जीवन की आखिरी घड़ी तक माहम की रक्षा करूँगा।" हमीर का यह आख़िरी उत्तर था।

दूसरे दिन रण-दुंदुभि बज उठी। ऊँची पहाडी पर बना रणथंभोर का किला और चारों ओर फैली शाही फ़ौजें। एक तरफ़ अपने बादशाह के लिए लड़नेवाली फ़ौजें तो दूसरी तरफ़ अपनी आन पर मर मिटने वाले सिपाही। एक तरफ़ भरपूर साधन, तो दूसरी तरफ़ भरपूर आन। लडाई क्या थी? यह बात की बाज़ी और यह बाज़ी जिसका निशाना एक आदमी के प्राण और इस एक प्राण के लिए हज़ारों प्राण, सरसों के दानों की तरह हथेली पर।

दोनों तरफ़ हज़ारों योद्धा काम आये। बादशाह की ताकत जितनी छीजती, दिल्ली उसे पूरा कर देती, पर हमीर की शक्ति-धारा की जो लहर बह जाती, फिर न लौटती हर टूटती तलवार सौ को निन्यानबे करती और हर गिरता सिपाही हज़ार को नौ सौ निन्यानबे। व्यय के रास्ते खुले हुए थे, आय के बंद! कारूँ खज़ाना और कुबेर का कोष भी यों कब तक टिका पाता।

हमीर उस दिन कुछ सोच रहे थे कि माहमशाह आकर खडे हो गए। "कहिए, शाह साहब, क्या बात है?" हमीर ने उनसे पूछा।

माहमशाह को चुप देखकर हमीर ने पूरी गंभीरता से कहा — "शाह साहब, यह लड़कों का खेल नहीं युद्ध है। फिर क्या आप नहीं जानते कि मैं राजपूत हूँ। जो वचन दे चुका हूँ, उसे मरते दम तक निभाऊँगा। इस लडाई में आपकी बहादुरी का चमत्कार देखकर मैं बहुत खुश हूँ। हार-जीत तो किस्मत के दो किनारे हैं, इनकी फ़िक्र न कीजिए।"

लडाई चलती रही। सामान और सिपाही घटते रहे। एक दिन भंडारी ने ख़बर दी, "आज खाने का सामान खत्म है।"

रणथंभोर के किले में एक सभा हुई कि अब क्या हो? माहमशाह ने बहुत खुशामद की, वह बहुत गिड़गिडाया कि उसे बादशाह को सौंपकर सुलह कर ली जाए, पर उसके प्रस्ताव का समर्थक वहाँ कोई न था। सचाई यह है कि हमीर और उनके साथियों के सामने यह प्रश्न ही न था कि हम कैसे बचें। उनकी विचार-दिशा तो केवल यह थी कि हम कैसे लड़ें? भावुकता का ऐसा ज्वार विश्व के इतिहास में शायद ही और कहीं आया हो।

फ़ैसला हुआ कि कल किले का द्वार खोल दिया जाए और जमकर युद्ध हो। इस युद्ध का स्पष्ट अर्थ था, आत्माहुति, सर्वस्व-समर्पण। जीत की कामना सिपाही को उत्साह देती है, तो विजय की आशा उसे बल। कामना और आशा के झूले पर इधर-से-उधर झूलने वाले ये सिपाही न थे — इन्हें झूलना नहीं, झूमना था, इन्हें बुझना नहीं जूझना था। और किले में यौवन की किलकारियाँ भरती इन स्त्रियों का क्या होगा? उन्होंने फ़ैसला किया कि हम किले के द्वार खुलने से पहले जौहर करेंगी।

अब वे निश्चिंत थे, जैसे उन्हें जो करना था, कर चुके थे। रात को वे सब सो रहे थे सुबह जल्दी उठने केलिए, और सुबह उनको जल्दी उठना था, हमेशा को सोने के लिए। ऐसी जीवंत नींद रात के सितारों ने फ़िर नहीं देखी, यह वे आपस में अब भी कहा करते हैं।

पौ फटी सब जागे और पुरुषों ने नित्य कर्म से निवृत्त हो सबसे पहले एक विशाल चिता सजाई। स्त्रियों ने पूजन किया, कीर्तन किया, अपने पतियों से मिलीं। पुरुषों ने उन्हें प्यार से थपथपाया। उन्होंने उनके पैर छुए। आज वे अपने सर्वश्रेष्ठ श्रृंगार में थीं, जैसे जीवन का सर्वोत्तम यात्रा पर आज उन्हें जाना था और यों वे दर्पदीप्त गति से चिता की ओर चलीं, जैसे स्वयंवर के बाद दुलहनें अपने रथ की ओर बढ़ रही हों।

क्या आत्मा की अमरता ऐसा विश्वास और मृत्यु का इतना मनोरम विवरण इतिहास के किसी और पृष्ठ में भी इतने प्रदीप्त रूप में लिखा गया है ?

किले का द्वार खोल दिया गया रणथंभोर के योद्धा रण में कूद पड़े। रण था यह दिल्ली की फ़ौजों के लिए, रणथंभोरवालों के लिए तो आत्मदान का यज्ञ था। माहम और हमीर साथ-साथ आगे बढ़े और काल बनकर बरसे। दूसरे सिपाही भी खून की आख़िरी बूँद तक लड़े।

रणथंभोर की ये शहादतें, ये बलिदान ये कुर्बानियाँ वीरता के इतिहास में अपना जोड़ नहीं रखतीं और आज सदियों बाद भी उनसे अगर-बत्तियों-सी, जीवन के सौरभ की भीनी एवं प्रेरक सुगंध आ रही है।

अभ्यास

शब्दार्थ :—

संकट	=	विपत्ति
सिपहगिरी	=	सिपाही का काम
खादिम	=	सेवक
फ़रार	=	भागा हुआ
भगोडा	=	भागने वाला
तिरछी	=	अप्रिय
आसरा	=	आश्रय
कसूर	=	अपराध
किस्मत	=	भाग्य
छीजना	=	कम होना
कारूँ खजाना	=	कुबेर का कोष (खजाना)

प्रश्न :—

1. राणा हमीर कौन थे ? वे क्या कर रहे थे ?
2. माहमशाह कौन था, वह हमीर की शरण क्यों आया ?
3. माहमशाह को किसीने क्यों शरण नहीं दिया ?
4. माहमशाह को शरण देने के संबन्ध में हमीर के सलाहकारों की राय क्या थी ?
5. माहमशाह को शरण देने के लिए हमीर ने क्या क्या तर्क देकर अपने सरदारों को तैयार किया ?
6. माहमशाह को शरण देने के प्रश्न पर विरोधी विचार रखते हुए भी सरदारों के मुँह से "धन्य महाराज" क्यों निकल पड़ा ?
7. हमीर ने माहमशाह को शरण देते हुए क्या कहा ?
8. अलाउद्दीन खिलजी ने हमीर के पास क्या संदेश भेजा ?
9. अलाउद्दीन खिलजी के संदेश पर हमीर ने क्या उत्तर लिखा ?
10. 'लाल अंकारों की मुस्कान' कहानी का संदेश क्या है ?

○

3 परीक्षा

जब रियासत देवगढ़ के दीवान सरदार सुजानसिंह बूढ़े हुए तो परमात्मा की याद आई। जाकर महाराज से विनय की, "दीनबंधु, दास ने श्रीमान् की सेवा चालीस साल तक की अब मेरी अवस्था भी ढल गई, राजकाज सँभालने की शक्ति नहीं रही। कहीं भूल-चूक हो जाए तो बुढ़ापे में दाग लगे। सारी ज़िन्दगी की नेकनामी मिट्टी में मिल जाए।"

राजा साहब अपने अनुभवशील नीतिकुशल दीवान का बड़ा आदर करते थे। बहुत समझाया, लेकिन जब दीवान साहब ने न माना तो हारकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, पर शर्त यह लगा दी कि रियासत के लिए नया दीवान आप ही को खोजना पड़ेगा।

दूसरे दिन देश के प्रसिद्ध पत्रों में यह विज्ञापन निकला कि देवगढ़ के लिए एक सुयोग्य दीवान की ज़रूरत है। जो सज्जन अपने को इस पद के योग्य समझें वे वर्तमान दीवान सरदार सुजान सिंह की सेवा में उपस्थित हों। यह ज़रूरी नहीं है कि वे ग्रेजुएट हों, मगर हृष्ट-पुष्ट होना आवश्यक है, मंदाग्नि के मरीज़ को यहाँ तक का कष्ट उठाने की कोई ज़रूरत नहीं। एक महीने तक उम्मीदवारों के रहन-सहन, आचार-विचार की देखभाल की जाएगी। विद्या का कम परन्तु कर्तव्य का अधिक विचार किया जाएगा। जो महाशय इस परीक्षा में पूरे उतरेंगे, वे इस उच्च पद पर सुशोभित होंगे।

इस विज्ञापन ने सारे मुल्क में हलचल मचा दी। ऐसा ऊँचा पद और किसी प्रकार की कैद नहीं। केवल नसीब का खेल है। सैकड़ों आदमी अपना-अपना भाग्य परखने के लिए चल खड़े हुए। देवगढ़ में नए-नए और रंग-बिरंगे मनुष्य दिखाई देने लगे। प्रत्येक रेलगाड़ी से उम्मीदवारों का एक मेला-सा उतरता। कोई पंजाब से चला आता था, कोई मद्रास से। कोई नए फैशन का प्रेमी, कोई पुरानी सादगी पर मिटा हुआ। पंडितों और मौलवियों को भी अपने - अपने भाग्य की परीक्षा करने का अवसर मिला। बेचारे सनद के नाम रोया करते थे, यहाँ उसकी कोई ज़रूरत नहीं थी। रंगीन एमामे, चोगे और नाना प्रकार के अँगरखे और कनटोप देवगढ़ में अपनी सज-धज दिखाने लगे। लेकिन सबसे विशेष संख्या ग्रेजुएटों की थी, क्यों कि सनद की कैद न होने पर भी सनद से परदा तो ढका रहता था।

सरदार सुजान सिंह ने इन महानुभावों के आदर-सत्कार का बड़ा अच्छा प्रबंध कर दिया था। लोग अपने-अपने कमरों में बैठे हुए रोज़ेदार मुसलमानों की तरह महीने के दिन गिना करते थे। हरएक व्यक्ति अपने जीवन को अपनी बुद्धि के अनुसार अच्छे रूप में दिखाने की कोशिश करता था। मिस्टर 'अ' नौ बजे दिन तक सोया करते थे, आजकल वे बगीचे में टहलते हुए उषा का दर्शन करते थे। मि. 'ब' को हुक्का पीने की लत थी, पर आजकल बहुत रात गए किवाड़ बंद करके अंधेरे में सिगार पीते थे। मि. 'द' 'स' और 'ज' से उनके घरों पर नौकरों की नाक में दम था, लेकिन ये सज्जन आजकल 'आप' और जनाब के बगैर नौकरों से बातचीत नहीं करते थे। महाशय 'क' नास्तिक थे, हक्सले के उपासक, मगर आजकल उनकी धर्मनिष्ठा देखकर मंदिर के पुजारी को पदच्युत हो जाने की शंका लगी रहती थी। मि. 'ल' को किताबों से घृणा थी, परन्तु आजकल वे बड़े-बड़े ग्रंथ देखने पढ़ने में डूबे रहते थे। जिससे बात कीजिए, वही नम्रता और सदाचार का देवता बना मालूम देता था। शर्माजी घड़ी रात से ही वेदमंत्र पढ़ने लगते थे। मौलवी साहब को नमाज़ और तिलावत के सिवा और कोई काम न था। लोग समझते थे कि एक महीने का झंझट है, किसी तरह काट लें। कहीं कार्य सिद्ध हो गया तो कौन पूछता है।

लेकिन मनुष्यों का वह बूढ़ा जौहरी आड़ में बैठा हुआ देख रहा था कि इन बगुलों में हंस कहाँ छिपा है।

एक दिन नए फैशनवालों को सूझी कि आपस में हाकी का खेल हो जाए। यह प्रस्ताव हाकी के मँजे हुए खिलाड़ियों ने पेश किया। यह भी तो आखिर एक

विद्या है। इसे क्यों छिपा रखें। संभव है, कुछ हाथों की सफ़ाई ही काम कर जाए। चलिए तय हो गया, फील्ड बन गया। खेल शुरू हो गया और गेंद किसी दफ़्तर के अप्रेन्टिस की तरह ठोकरें खाने लगीं।

रियासत देवगढ़ में यह खेल बिलकुल निराली बात थी। पढ़े-लिखे भले-मानस लोग शतरंज और ताश जैसे गंभीर खेल खेलते थे। दौड़-कूद के खेल बच्चों के खेल समझे जाते थे।

खेल बड़े उत्साह से जारी था। धावे के लोग जब गेंद को लेकर तेज़ी से उड़ते तो ऐसा जान पड़ता था कि कोई लहर बढ़ती चली आती है। लेकिन दूसरी ओर के खिलाड़ी इस बढ़ती हुई लहर को इस तरह रोक लेते थे कि मानो लोहे की दीवार हों।

संध्या तक यही धूम धाम रही। लोग पसीने से तर हो गए। खून की गरमी आँखों और चेहरे से झलक रही थी। हाँफते-हाँफते बेदम हो गए, लेकिन हार-जीत का निर्णय न हो सका। अंधेरा हो गया था। इस मैदान से ज़रा दूर हटकर एक नाला था। उस पर कोई पुल न था। पथिकों को नाले में से चलकर आना पड़ता था। खेल अभी बंद ही हुआ था और खिलाड़ी लोग दम ले रहे थे कि एक किसान अनाज से भरी हुई गाड़ी लिए हुए उस नाले में आया। लेकिन कुछ तो नाले में कीचड़ था और कुछ उसकी चढ़ाई इतनी ऊँची थी कि गाड़ी ऊपर न चढ़ सकती थी। वह कभी बैलों को ललकारता, कभी पहियों को हाथ से धकेलता, लेकिन बोझ अधिक था और बैल कमज़ोर। गाड़ी ऊपर को न चढ़ती और चढ़ती भी तो कुछ दूर चढ़कर फिर खिसककर नीचे पहुँच जाती। किसान बार - बार ज़ोर लगाता और बार-बार झुंझलाकर बैलों को मारता, लेकिन गाड़ी उभरने का नाम न लेती। बेचारा इधर-उधर निराश होकर ताकता, मगर वहाँ कोई नज़र न आता। गाड़ी को अकेले छोड़कर कहीं जा भी न सकता था। बडी विपत्ति में फँसा हुआ था। इसी बीच खिलाड़ी हाथों में डंडे लिए धूमते-धामते उधर से निकले। किसान ने उनकी तरफ़ सहमी हुई आँखों से देखा, परंतु किसी से मदद माँगने का साहस न हुआ। खिलाड़ियों ने भी उसको देखा मगर बंद आँखों से, जिनमें सहानुभूति न थी। उनमें स्वार्थ था, मद था, मगर उदारता और भाईचारे का नाम भी न था।

लेकिन उसी समूह में एक ऐसा मनुष्य था, जिसके हृदय में दया थी और साहस था। आज हाकी खेलते हुए उसके पैरों में चोट लग गई थी। लँगड़ाता हुआ धीरे-धीरे चला आता था। अकस्मात् उसकी निगाह गाड़ी पर पड़ी। ठिठक गया। उसे किसान की सूरत देखते ही सब बातें ज्ञात हो गईं। डंडा एक किनारे रख दिया। कोट उतार डाला और किसान के पास जाकर बोला, "मैं तुम्हारी गाड़ी निकाल दूँ?"

किसान ने देखा, एक गठे हुए बदन का लंबा आदमी सामने खड़ा है। झुककर बोला, "हुज़ूर। मैं आपसे कैसे कहूँ?"

युवक ने कहा, "मालूम होता है, तुम यहाँ बड़ी देर से फँसे हुए हो। अच्छा तुम गाड़ी पर जाकर बैलों को साधो, मैं पहियों को धकेलता हूँ, अभी गाड़ी ऊपर चढ़ जाएगी।"

किसान गाड़ी पर जा बैठा। युवक ने पहियों को ज़ोर लगाकर उकसाया। कीचड़ बहुत ज्यादा था। वह घुटने तक ज़मीन में गड़ गया, लेकिन हिम्मत न हारी, उसने फिर ज़ोर लगाया, उधर किसान ने बैलों को ललकारा। बैलों को सहारा मिला, हिम्मत बँध गई, उन्होंने कंधे झुकाकर एक बार ज़ोर लगाया तो गाड़ी नाले के ऊपर थी।

किसान युवक के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। बोला, "महाराज, आपने आज मुझे उबार लिया, नहीं तो सारी रात यहीं बैठना पड़ता।"

युवक ने हँसकर कहा, "अब मुझे कुछ इनाम देते हो?" किसान ने गंभीर भाव से कहा, "नारायण चाहेंगे, तो दीवानी आपको ही मिलेगी।"

युवक ने किसान की तरफ़ गौर से देखा। उसके मन में एक संदेह हुआ, कहीं ये सुजान सिंह तो नहीं है? आवाज़ मिलती है, चेहरा - मोहरा भी वही लगता है। किसान ने भी उसकी ओर तीव्र दृष्टि से देखा। शायद उसके दिल के संदेह को भाँप गया। मुसकराकर बोला, "गहरे पानी में पैठने से ही मोती मिलता है।"

महीना पूरा हुआ और चुनाव का दिन आ पहुँचा। उम्मीदवार लोग प्रातः काल से ही अपनी-अपनी किस्मत का फैसला सुनने के लिए उत्सुक थे। दिन काटना पहाड़ हो गया। प्रत्येक के चेहरे पर आशा और निराशा के रंग

आते-जाते थे। नहीं मालूम, आज किसके नसीब जागेंगे ? न जाने किस पर लक्ष्मी की कृपादृष्टि होगी ?

संध्या समय राजा साहब का दरबार सजाया गया। शहर के रईस और धनाढ्य, राजकर्मचारी और दरबारी तथा दीवानी के उम्मीदवारों का समूह, सब रंग-बिरंगी सज-धज बनाए दरबार में आ विराजे। उम्मीदवारों के कलेजे धड़क रहे थे।

तब सरदार सुजान सिंह ने खड़े होकर कहा, "दीवानी के उम्मीदवार महाशयो ! मैं ने आप लोगों को जो कष्ट दिया है, इसके लिए मुझे क्षमा कीजिए। इस पद के लिए ऐसे पुरुष की आवश्यकता थी जिसके हृदय में दया हो और साथ-साथ आत्मबल। हृदय वह जो उदार हो, आत्मबल वह जो विपत्तिका वीरता के साथ सामना करे और इस रियासत के सौभाग्य से हमको ऐसा पुरुष मिल गया। ऐसे गुणवाले संसार में कम हैं और जो हैं वे कीर्ति और मान के शिखर पर बैठे हुए हैं, उन तक हमारी पहुँच नहीं। मैं रियासत को पंडित जानकीनाथ-सा दीवान पाने पर बधाई देता हूँ।"

रियासत के कर्मचारियों और रईसों ने जानकीनाथ की तरफ़ देखा। उम्मीदवार दल की आँखें उधर उठीं, मगर उन आँखों में सत्कार था इन आँखों में ईर्ष्या।

सरदार साहब ने फिर फरमाया, "आप लोगों को यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति न होगी कि जो पुरुष स्वयं जख्मी होकर भी एक गरीब किसान की भरी हुई गाड़ी को दलदल से निकालकर नाले के ऊपर चढ़ा दे, उसके हृदय में साहस, आत्मबल और उदारता का वास है। ऐसा आदमी गरीबों को कभी न सताएगा। उसका संकल्प दृढ़ है, जो उसके चित्त को स्थिर रखेगा। वह चाहे धोखा खा जाए, परंतु दया और धर्म से कभी न हटेगा।"

अभ्यास

शब्दार्थ :—

अवस्था ढल गयी	= बूढ़ा हो गया
भूल-चूक होना	= गलती होना
शर्त .	= വ്യവസ്ഥ, Condition
पूरे उतरना	= जैसा चाहिए वैसा ही होना
उम्मीदवार	= സ്ഥാനാർത്ഥി, Candidate
नसीब	= भाग्य
सनद	= प्रमाण-पत्र
रोज़ेदार	= उपवास करने वाले
लत	= बुरी आदत
उबार लेना	= बचाना
जख्मी	= घायल
दलदल	= कीचड़

प्रश्न :—

1. सुजान सिंह ने महाराज से क्या प्रार्थना की ?
2. राजा ने कौन-सी शर्त लगा दी ? क्यों ?
3. विज्ञापन में दीवान पद के लिए क्या-क्या योग्यताएँ माँगी गयी थी ?
4. देवगढ़ के उम्मीदवार दीवान का पद प्राप्त करने के लिए क्या-क्या करते थे ?
5. सुजान सिंह ने उम्मीदवारों की परीक्षा कैसे की ?
6. सुजान सिंह दीवान पद के लिए कैसे व्यक्ति चाहते थे ?
7. पंडित जानकी नाथ को दीवान पद देकर सुजान सिंह ने क्या फरमाया?

4 लड़की

उसने एक बार देखा, फिर सिर झुकाकर पढ़ने लगी। उसका छोटा भाई सुड़क-सुड़क कर दूध पीता रहा।

मैंने पूछा, "क्यों सावित्री, तुम दूध पी चुकी ?"

उसने मेरी ओर देखा, कुछ बोली नहीं, पढ़ने लगी।

जाड़े की सुबह थी। घर के सामने थोड़ी धूप निकल आई थी। मैं चारपाई पर बैठा हुआ एक किताब पढ़ रहा था और सामने चटाई पर धूप में मेरे भतीजे के दोनों बच्चे अपना-अपना काम कर रहे थे। लड़का स्वेटर पहने था, पाँव में जूता था। लड़की के पाँव नंगे थे और वह केवल सूती फ्राक पहने थी।

"ऐं कोंचता क्यों है ? पढ़ने दे।" लड़की चिल्लाई।

मैं ने देखा, लड़का उसे कोंच रहा था, उसकी कलम छीन रहा था ।

"अपने तो खुद पढ़ना नहीं, मुझे भी पढ़ने नहीं देता। दिन- रात शैतानी करता है।"

लड़की ने लड़के को थोड़ा परे ढकेल दिया। वह थोड़ा लुढ़क गया । वह उठा और बहन के बाल पकड़कर खींचने लगा। लड़की ज़ोर-ज़ोर से चीखने लगी।

मुझे गुस्सा आ रहा था । इच्छा हुई कि उठकर तीन-चार झापड़ इस बदतमीज़ को रसीद कर दूँ, लेकिन अपनी हैसियत समझकर चुप रह गया । दो दिन केलिए मेहमान की तरह शहर से यहाँ आया हूँ, मारने पर पता नहीं क्या प्रतिक्रिया हो माँ-बाप की। इसलिए केवल डाँटा, "छोड़-छोड़, क्यों उसे मार रहा है ?"

वह मेरी परवाह किए बिना अपना काम करता रहा। बच्चों की माँ किसी काम से बाहर निकली। दृश्य देखा और चुपचाप फिर अंदर चली गई। मैंने सोचा, "शायद को किसी बात की चिंता नहीं है। मैं ही कुछ करूँ।"

तब तक लड़की ने आजिज़ आकर लड़के की बाँह पर दाँत गड़ा दिए ।

"अरे बाप, मार ड़ाला।" वह चिल्लाने लगा।

माँ जाते-जाते मुड़ पड़ी, झपट कर आई और लड़के को गोद में उठा लिया।

"इसने काट लिया, अरे बाप रे !" वह और भी ज़ोर से चिल्लाने लगा।

माँ ने लड़की की पीठ पर तीन-चार लात जमाते हुए पूछा "क्यों री चुड़ैल, इसे काट क्यों लिया ?"

लड़की सुबकती हुई बोली, "मैंने काटा नहीं, यह मेरी कलम छीन रहा था। बाल खींच रहा था, छोड़ ही नहीं रहा था। छुड़ाने के लिए मैंने हलके से दाँत गड़ा दिए।"

"नहीं माँ, इसने ज़ोर से काटा था।"

"चुड़ैल कहीं की। कलम छीन रहा था, तो दे दिया होता। पढ-लिखकर लाट-गवर्नर बनेगी क्या ?" माँ ने कलम छीनकर लड़के को दे दिया। उसे पुचकारते हुए बोली, "लो, लिखो मेरी लाल।"

"हाँ, लिखो मेरे लाल।" लड़की ने मुँह चिढ़ाते हुए कहा "इसे लिखना भी आता है ? रोज़ क्लास में पिटता है।"

"चुप कर और चल काम कर। बैठ गई सवेरे-सवेरे पोथी-पत्रा लेकर । राख पड़ी है, खेत में फेंक आ।"

लड़की उठी। थोड़ी देर बाद वह सिर पर राख की खाँची उठाए हुए खेत की ओर जा रही थी और साहबजादे कलम-वलम फेंक कर खेलने चले गए थे।

दोपहर हुई। लड़की माँ के इशारों पर भाग-भाग कर घर का काम करती रही। मैं अपने भतीजे के साथ खाना खाने बैठा तो देखा, सामने लड़की चुपचाप बैठी है।

मैंने पूछा — "सावित्री, तुमने अभी तक खाना नहीं खाया ? चेहरा उतरा-उतरा-सा है। आओ, तुम भी बैठ जाओ।"

"अरे, वह बाद में खा लेगी। खाइए आप लोग।"

मैंने भतीजे की ओर देखा, उसके चेहरे पर कोई प्रतिक्रिया नहीं थी। तब तक लड़का कहीं से आ गया धूल-धूसरित-सा। चिल्लाने लगा, "अरे बड़े ज़ोर से भूख लगी है, खाने को दो।"

"आओ, मेरे लाल। जल्दी से हाथ-मुँह धो लो, तब तक खाना परोस रही हूँ।"

उसने सामने पड़े कटोरे को पाँव से मारा और पाँव पटकता हुआ बोला, "नहीं ! पहले खाने को दो, भूख लगी है।"

"अच्छा भाई, गुस्सा मत करो। लो, खालो" माँ ने झट से उसके सामने थाली रख दी।

मैं ने भतीजे की ओर फिर देखा। वह निर्विकार भाव से खाए जा रहा था।

लड़की चुपचाप मार खाई-सी अपनी जगह सिमटी-सिकुड़ी बैठी थी। मुझे यह सब बहुत अजीब लग रहा था।

खा-पीकर बरामदे में लेटा था। लड़का वहीं खेल रहा था। एकाएक चिल्लाने लगा – "अरे भाई रे, पेट में दर्द हो रहा है।"

मैंने कहा, "लगता है कुछ गड़बड़ सड़बड़ खा लिया है।"

"गड़बड़-सड़बड़ तो कुछ नहीं खाया होगा। हम लोग जो खा रहे हैं, वही यह भी खा रहा है।" बाप ने बचाव किया।

"तो ज्यादा खा लिया होगा।"

"अरे, कहाँ ? यह कमबख्त तो खाता ही नहीं है, बस ठूँगता है। हूँ. . . . .।" मैंने कहा, "कल से ही इसे ठूँगते हुए देख रहा हूँ।

"अरे, बहुत तेज़ दर्द हो रहा है।" वह चिल्लाया।

"सावित्री।"

"हाँ बाबूजी।" कहती हुई वह भागी-भागी बाहर आई। उसके हाथ में दाल-भात से भरा कटोरा था। शायद वह खा रही थी, खाते-खाते भागी आई थी।

"देख, खाना-वाना बाद में खा लेना, जरा भागकर वैद्य जी को बुला तो ला, तब तक मैं बनिये के यहाँ जा रहा हूँ सोड़ा लेने। फिर वहीं से चिल्लाकर अपनी पत्नी से कहा, "अरे, मुन्ने को सँभालना और थोड़ा पानी गरम करके रखना, उसके पेट में दर्द हो रहा है।"

मैंने कटोरों को देखा। दाल और मोटा भात। लेकिन हम लोगों को तो बढ़िया चावल का भात मिला था और इस लड़की के लिए सब्जी-बब्जी कुछ भी नहीं।

भतीजा बनिये के यहाँ से झल्लाया हुआ लौटा, "साला कुछ नहीं रखता। दुकान खोल रखी है और जो चीज़ माँगो वही नदारद।" तब तक सावित्री भी आ गई।

"बाबूजी, वैद्य जी तो कहीं गए हुए हैं।" "अरे, यह कुलच्छिनी जहाँ जाएगी, वहीं काम नहीं होगा।" माँ ने टिप्पणी जड़ी।

लड़का चिल्लाए जा रहा था।

"रुको-रुको, तुम लोग परेशान न हो। शायद मेरे पास दर्द की कुछ गोलियाँ हों।"

"गोलियाँ मिल गईं।" खिलाईं। लड़का राहत अनुभव करने लगा। उसे नींद आने लगी। माँ उसे लेकर अंदर चलि गई और सावित्री से कहती गई, "दो-चार जूठे बरतन हैं, इन्हें माँज डालना।"

मैंने सावित्री को गोद में उठा लिया। इस लड़की के लिए मैं भीतर तक आर्द्र हो आया था। उसे प्यार किया, फिर कहा, "तुम्हारा खाना पड़ा है, खा लो बेटे।"

गोद से उतर कर उसने कटोरा उठा लिया। धीरे-धीरे खाना खाने लगी। निरुद्वेग उदासी उसके चेहरे से चिपकी हुई थी।

मैंने कहा, "सावित्री बेटे।"

उसने खाते-खाते चेहरा ऊपर उठाया, जैसे कह रही हो, "हाँ कहिए।"

"तुम्हें बुरा नहीं लगता ?"

"क्या दादाजी ?"

"अरे यही जो कुछ तुम्हारे साथ होता है।"

उसने इनकार में सिर हिलाया।

"क्यों ?"

"लड़की हूँ न।"

मैं भीतर तक चरमरा गया। लड़की उसी निरुद्वेग भाव से खाती रही।

अभ्यास

शब्दार्थ :—

चटाई	=	പായ്, Mat
ढकेलना	=	തള്ളുക, to push
लुढ़कना	=	ഉരുളുക, to roll down
झापड़	=	तमाचा
बदतमीज़	=	മര്യാദയില്ലാത്ത, Unmannerly
हैसियत	=	योग्यता
राहत	=	सुख
खाँची	=	ചെറിയ കുട്ട, small basket
अजिंज़	=	लाचार
आजिज़आना	=	तंग आना

प्रश्न :—

1. जाड़े की सुबह में लड़की और लड़के की पोशाक कैसी थी ?
2. लड़की क्यों ज़ोर-ज़ोर से चीखने लगी ?
3. लड़के की बदतमीज़ी देखकर भी लेखक ने क्यों उसे झापड़ नहीं मारा ?
4. लड़की ने लड़के की बाँह पर क्यों दाँत गड़ा दिये ?
5. लड़की और लड़के के भोजन में माँ कैसे भेदभाव रखती थी ?
6. लेखक ने सावित्री से अपना प्यार कैसे प्रकट किया ?
7. 'लड़की' कहानी का संदेश क्या है ?

○

5 चीफ़ की दावत

आज मिस्टर शामनाथ के घर चीफ़ की दावत थी। शामनाथ और उनकी धर्मपत्नी को पसीना पोंछने की फुर्सत न थी। पत्नी ड्रैसिंग गाउन पहने, उलझे हुए बालों का जूड़ा बनाए मुँह पर फैली हुई सुर्खी और पौडर को भूले, और मिस्टर शामनाथ सिगरेट-पर-सिगरेट फूँकते हुए, चीज़ों की फेहरिस्त हाथ में थामें एक कमरे से दूसरे कमरे में आ-जा रहे थे।

आखिर पाँच बजते-बजते तैयारी मुकम्मल होने लगी। कुर्सियाँ, मेज़, तिपाईयाँ, नैपकिन, फूल सब बरामदे में पहुँच गये। ड्रिंक का इन्तज़ाम बैठक में कर दिया गया। अब घर का फालतू सामान आलमारियों के पीछे और पलंगों के नीचे छिपाया जाने लगा। तभी शामनाथ के सामने सहसा एक अड़चन खड़ी हो गयी — माँ का क्या होगा ?

इस बात की ओर न उनका और न उनकी कुशल गृहिणी का ध्यान गया था। मिस्टर शामनाथ श्रीमती की ओर घूम कर अंग्रेज़ी में बोले — 'माँ का क्या होगा ?'

श्रीमती काम करते - करते ठहर गयीं और थोड़ी देर तक सोचने के बाद बोलीं — "इन्हें पिछवाड़े इनकी सहेली के घर भेज दो। रात भर बेशक वहीं रहें। कल आ जायँ।"

शामनाथ सिगरेट मुँह में रखे, सिकुड़ी आँखों से श्रीमती के चेहरे की ओर देखते हुए पल-भर सोचते रहे, फिर सिर हिलाकर बोले — 'नहीं, मैं नहीं चाहता कि उस बुढ़िया का आना-जाना यहाँ फिर से शुरु हो। पहले ही बड़ी मुश्किल से बन्द किया था। माँ से कहें कि जल्दी ही खाना खाकर शाम को ही अपनी कोठरी में चली जायँ। मेहमान कहीं आठ बजे आएँगे। इससे पहले ही अपने काम से निपट लें।'

सुझाव ठीक था। दोनों को पसंद आया। मगर फिर सहसा श्रीमती बोल उठीं — जो वह सो गयीं और नींद में खर्राटे लेने लगीं, तो ? साथ ही तो बरामदा है, जहाँ लोग खाना खाएँगे।

— तो इन्हें कह देंगे कि अन्दर से दरवाज़ा बन्द कर लें। मैं बाहर से ताला लगा दूँगा। या माँ को कह देता हूँ कि अन्दर जाकर सोयें नहीं, बैठी रहें, और क्या ?

— और जो सो गयीं, तो ? डिनर का क्या मालूम कब तक चले। ग्यारह-ग्यारह बजे तक तो तुम लोग ड्रिंक ही करते रहते हो।

शामनाथ कुछ खीझ उठे, हाथ झटकते हुए बोले — अच्छी-भली यह भाई के पास जा रही थीं। तुमने यूँ ही खुद अच्छा बनने के लिए बीच में टाँग अड़ा दी !

— वाह ! तुम माँ और बेटे की बातों में मैं क्यों बुरी बनूँ ? तुम जानो और वह जानें।

मिस्टर शामनाथ चुप रहे। यह मौका बहस का न था। समस्या का हल ढूँढ़ने का था। उन्होंने घूमकर माँ की कोठरी की ओर देखा। कोठरी का दरवाज़ा बरामदे में खुलता था। बरामदे की ओर देखते हुए झट से बोले — मैं ने सोच लिया है — और उन्हीं कदमों माँ की कोठरी के बाहर जा खड़े हुए। माँ दीवार के साथ एक चौकी पर बैठी, दुपट्टे में मुँह-सिर लपेटे, माला जप रही थीं। सुबह से तैयारी होती देखते हुए माँ का भी दिल धड़क रहा था। बेटे के दफ्तर का बड़ा साहब घर आ रहा है, सारा काम सुभीते से चल जाय।

— माँ, आज तुम खाना जल्दी खा लेना। मेहमान लोग साढ़े सात बजे आ जाएँगे।

माँ ने धीरे-से मुँह से दुपट्टा हटाया और बेटे को देखते हुए कहा — आज मुझे खाना नहीं खाना है बेटा, तुम जानते हो, माँस-मछली बने, तो मैं कुछ नहीं खाती !

— जैसे भी हो, अपने काम से जल्दी निपट लेना।

— अच्छा बेटा।

— और माँ, हम लोग पहले बैठक में बैठेंगे। उतनी देर तुम यहाँ बरामदे में बैठना। फिर जब हम यहाँ आ जाएँ, तो तुम गुसलखाने के रास्ते बैठक में चली जाना।

माँ अवाक बेटे का चेहरा देखने लगीं। फिर धीरे-से बोलीं — अच्छा, बेटा।

— और माँ, आज जल्दी सो नहीं जाना। तुम्हारे खर्राटे की आवाज़ दूर तक जाती है।

माँ लज्जित-सी आवाज़ में बोलीं — क्या करूँ, बेटा, मेरे बस की बात नहीं है। जब से बीमारी से उठी हूँ, नाक से साँस नहीं ले सकती।

मिस्टर शामनाथ ने इन्तज़ाम तो कर दिया, फिर भी उनकी उधेड़बुन खत्म नहीं हुई — चीफ़ अचानक उधर आ निकला तो? आठ-दस मेहमान होंगे, देशी अफ़सर, उनकी स्त्रियाँ होंगी, कोई भी गुसलखाने की तरफ़ जा सकता है। क्षोभ और क्रोध में वह सिर झुँझलाने लगे। एक कुर्सी को उठाकर बरामदे में कोठरी के बाहर रखते हुए बोले — आओ माँ, इस पर ज़रा बैठो तो।

माँ माला संभालती, पल्ला ठीक करती हुई उठीं और धीरे से कुर्सी पर आकर बैठ गयीं।

— यों नहीं, माँ, टाँगें ऊपर चढ़ कर नहीं बैठते। यह खाट नहीं है। माँ ने टाँगें नीचे उतार दीं।

— और खुदा के वास्ते नंगे पाँव नहीं घूमना। न ही वह खड़ाऊँ पहन कर सामने आना। किसी दिन तुम्हारी वह खड़ाऊँ उठाकर मैं बाहर फेंक दूँगा।

माँ चुप रहीं।

— कपड़े कौन-से पहनोगी, माँ?

— जो हैं, वही पहनूँगी, बेटा! जो कहो, पहन लूँ।

मिस्टर शामनाथ सिगरेट मुँह में रखे फिर अधखुली आँखों से माँ की ओर दखने लगे, और माँ के कपड़ों की सोचने लगे। शामनाथ हर बात में तरतीब चाहते थे। घर का संचालन उनके अपने हाथ में था। खूँटियाँ कमरों में कहाँ लगायी जाएँ, बिस्तर कहाँ पर बिछें, किस रंग के पर्दे लगाए जाएँ, श्रीमती कौन-सी साड़ी पहनें, मेज़ किस साइज़ की हों . . . . . . शामनाथ को चिंता थी कि अगर चीफ़ का साक्षात् माँ से हो गया, तो कहीं लज्जित न होना पड़े। माँ को सिर से पाँव तक देखते हुए बोले — तुम सफ़ेद कमीज़ और सफ़ेद सलवार पहन लो, माँ। पहन के आओ तो ज़रा देखूँ।

माँ धीरे-से उठीं और अपनी कोठरी में कपड़े पहनने चली गयीं।

— यह माँ का झमेला ही रहेगा —उन्होंने फिर अंग्रेज़ी में अपनी स्त्री से कहा — कोई ढंग की बात हो, तो भी कोई कहे। अगर कहीं कोई उल्टी-सीधी बात हो गयी। चीफ़ को बुरा लगा, तो सारा मज़ा जाता रहेगा।

माँ सफ़ेद कमीज़ और सफ़ेद सलवार पहनकर बाहर निकलीं। छोटा-सा कद, सफ़ेद कपड़ों में लिपटा छोटा-सा सूखा हुआ शरीर, धुँधली आँखें, केवल सिर के आधे झड़े हुए बाल, पल्ले की ओट में छिप पाये थे। पहले से कुछ ही कम कुरूप नज़र आ रही थीं।

— चलो, ठीक है। कोई चूड़ियाँ-वूड़ियाँ हों, तो वह भी पहन लो। कोई हर्ज नहीं।

— चूड़ियाँ कहाँ से लाऊँ बेटा, तुम तो जानते हो, सब जेवर तुम्हारी पढ़ाई में बिक गये।

यह वाक्य शामनाथ को तीर की तरह लगा। तिनक कर बोलें — यह कौन-सा राग छेड़ दिया, माँ! सीधा कह दो, नहीं हैं जेवर, बस। इससे पढ़ाई-वढ़ाई का क्या ताल्लुक है? जो जेवर बिका, तो कुछ बनकर ही आया हूँ, निरा लंडूरा तो नहीं लौट आया। जितना दिया था, उससे दुगुना ले लेना।

— मेरी जीभ जल जाय, बेटा, तुम से जेवर लूँगी? मेरे मुँह से यों ही निकल गया। जो होते, तो लाख बार पहनती।

* * * *

साढ़े पाँच बज चुके थे। अभी मिस्टर शामनाथ को खुद भी नहा- धोकर तैयार होना था। श्रीमती कब की अपने कमरे में जा चुकी थीं। शामनाथ जाते हुए एक बार फिर माँ को हिदायत करते हुए गये — माँ रोज़ की तरह गुमसुम बनकर नहीं बैठी रहना। अगर साहब इधर आ निकलें और कोई बात पूछे, तो ठीक तरह से बात का जवाब देना।

मैं न पढ़ी न लिखी, बेटा, मैं क्या बात करूँगी। तुम कह देना, माँ अनपढ़ है, कुछ जानती-समझती नहीं। वह नहीं पूछेगा।

सात बजते-बजते माँ का दिल धक-धक करने लगा — अगर चीफ़ सामने आ गया और उसने कुछ पूछा, तो वह क्या जवाब देगी ? अंग्रेज़ को तो दूर से ही देखकर घबड़ा उठती थी, यह तो अमरीकी है। न मालूम क्या पूछे। मैं क्या कहूँगी। माँ का जी चाहा कि चुपचाप पिछवाड़े विधवा सहेली के घर चली जाय। मगर बेटे के हुक्म को कैसे टाल सकती थी! चुपचाप कुरसी पर से टाँगें लटकाये वहीं बैठी रहीं।

* * * *

एक कामयाब पार्टी वह है, जिस में ड्रिंक कामयाबी से चल जाय। शामनाथ की पार्टी सफलता के शिखर को चूमने लगी। वार्तालाप उसी रौ में बह रहा था, जिस रौ में गिलास भरे जा रहे थे। कहीं कोई रुकावट नहीं, कोई अड़चन न थी। साहब को ह्विस्की पसंद आयी थी। मेम साहब को पर्दे पसंद आये थे, सोफ़ा-कवर का डिज़ाइन पसंद आया था, कमरे की सजावट पसंद आयी थी। इस से बढ़कर क्या चाहिए। साहब तो ड्रिंक के दूसरे दौर में ही चुटकुले और कहानियाँ कहने लग गये थे। दफ्तर में जितना रौब रखते थे, यहाँ पर उतने ही दोस्त-परवर हो रहे थे। और उनकी स्त्री काला गउन पहने, गले में सफ़ेद मोतियों का हार, सेंट और पाउडर की महक से ओत प्रोत, कमरे में बैठी सभी देशी स्त्रियों की आराधना का केन्द्र बनी हुई थीं। बात-बात पर हँसती, बात-बात पर सिर हिलातीं। और शामनाथ की स्त्री से तो ऐसे बातें कर रही थीं, जैसे उनकी पुरानी सहेली हों।

और इसी रौ में पीते-पिलाते साढ़े दस बज गये। वक्त गुज़रता पता ही न चला।

आखिर सब लोग अपने-अपने गिलासों में से आखिरी घूँट पीकर खाना खाने के लिए उठे और बैठक से बाहर निकले। आगे-आगे शामनाथ रास्ता दिखाते हुए पीछे, चीफ़ और दूसरे मेहमान।

बरामदे में पहुँचते शामनाथ सहसा ठिठक गये जो दृश्य उन्होंने देखा, उससे उनकी टाँगें लड़खड़ा गयीं और क्षण भर में सारा नशा हिरन होने लगा। बरामदे में ऐन कोठरी के बाहर माँ अपनी कुर्सी पर ज्यों-की-त्यों बैठी थीं। मगर दोनों पाँव कुर्सी की सीट पर रखे हुए, और सिर दायें से बायें और बायें से दायें झूल रहा था और मुँह से लगातार गहरे खर्राटों की आवाज़ें आ रही थीं। जब सिर कुछ देर के लिए टेढ़ा होकर एक तरफ़ को थम जाता, तो खर्राटे और भी गहरे हो उठते। और फिर जब झटके से नींद टूटती, तो सिर फिर दायें से बायें झूलने लगता। पल्ला सिर से खिसक आया था और माँ के झड़े हुए बाल आधे गंजे सिर पर अस्त-व्यस्त बिखर रहे थे।

देखते ही शामनाथ क्रुद्ध हो उठे। जी चाहा कि माँ को धक्का देकर उठा दें और उन्हें कोठरी में धकेल दें, मगर ऐसा करना संभव न था, चीफ़ और बाकी मेहमान पास खड़े थे।

माँ को देखते ही देशी अफ़सरों की कुछ स्त्रियाँ हँस दीं कि इतने में चीफ़ ने धीरे-से कहा — पूअर डिअर!

माँ हड़बड़ा कर उठ बैठीं। सामने खड़े इतने लोगों को देखकर ऐसी घबरायी कि कुछ कहते न बना। झट से पल्ला सिर पर रखती हुई खड़ी हो गयीं और ज़मीन को देखने लगीं। उनके पाँव लड़खड़ाने लगे और हाथों की अँगुलियाँ थर-थर कांपने लगीं।

— माँ, तुम जाकर सो जाओ, तुम क्यों इतनी देर तक जाग रही थीं ? — और खिसियायी हुई नज़रों से शामनाथ चीफ़ के मुँह की ओर देखने लगे।

चीफ़ के चेहरे पर मुस्कुराहट थी। वह वहीं खड़े-खड़े बोले — नमस्ते!

माँ ने झिझकते हुए, अपने में सिमटते हुए दोनों हाथ जोड़े, मगर एक हाथ दुपट्टे के अंदर माला को पकड़े हुए था, दूसरा बाहर, ठीक तरह से नमस्ते भी न कर पायीं। शामनाथ इस पर भी खिन्न हो उठे।

इतने में चीफ़ ने अपने दायाँ हाथ मिलाने के लिए माँ के आगे किया। माँ और घबरा उठीं।

— माँ, हाथ मिलाओ!

पर हाथ कैसे मिलातीं ? दायें हाथ में तो माला थी। घबराहट में माँ ने बायाँ हाथ ही साहब के दायें हाथ में रख दिया। शामनाथ दिल-ही-दिल में जल उठे। देशी अफसरों की स्त्रियाँ खिलखिलाकर हँस पडीं।

— यूँ नहीं, माँ ! तुम तो जानती हो दायाँ हाथ मिलाया जाता है। दायाँ हाथ मिलाओ ?

मगर तब तक चीफ़ माँ का बायाँ हाथ ही बार-बार हिलाकर कह रहे थे — हौ, डू यू डू ?

— कहो, माँ, मैं ठीक हूँ, खैरियत से हूँ।

माँ कुछ बड़बड़ायीं।

— माँ कहती हैं, मैं ठीक हूँ। कहो माँ, हौ डू यू डू ?

माँ धीरे-से सकुचाते हुए बोलीं - हौ डू डू ...?

एक बार फिर कह कहा उठा।

वातावरण हल्का होने लगा। साहब ने स्थिति संभाल ली थी। लोग हँसने-चहकने लगे थे। शामनाथ के मन का क्षोभ भी कुछ-कुछ कम होने लगा था।

साहब अपने हाथ में माँ का हाथ अब भी पकड़े हुए थे और माँ सिकुड़ी जा रही थीं। साहब के मुँह से शराब की बू आ रही थी ।

शामनाथ अंग्रेज़ी में बोले — मेरी माँ गाँव की रहने वाली हैं। उमर भर गाँव में रही हैं। इसलिए आप से लजाती हैं।

साहब इस पर खुश नज़र आये। बोले — सच ? मुझे गाँव के लोग बहुत पसंद हैं। तब तो तुम्हारी माँ गाँव के गीत और नाच भी जानती होंगी ? — चीफ़ खुशी से सिर हिलाते हुए माँ को टक-टकी बाँधे देखने लगे।

— माँ, साहब कहते हैं, कोई गाना सुनाओ, कोई पुराना गीत, तुम्हें तो कितने ही याद होंगे।

माँ धीरे से बोलीं — मैं क्या गाऊँगी, बेटा। मैंने कब गाया है ?

— वाह, माँ ! मेहमान का कहना भी कोई टालता है ? साहब ने इतनी रीझ से कहा है, नहीं गाओगी तो साहब बुरा मानेंगे।

— मैं क्या गाऊँ बेटा, मुझे क्या आता है?

— वाह ! कोई बढ़िया टप्पे सुना दो। दो पत्तर अनाराँ दे . . . .

देशी अफसर और उनकी स्त्रियों ने इस सुझाव पर तालियाँ पीटीं। माँ कभी दीन-दृष्टि से बेटे के चेहरे को देखतीं, कभी पास खड़ी बहू के चेहरे को।

इतने में बेटे ने गंभीर आदेश-भरे लहजे में कहा — माँ !

इसके बाद हाँ या ना का सवाल ही न उठता था। माँ बैठ गयीं और क्षीण, दुर्बल लरजती आवाज़ में एक पुराना विवाह का गीत गाने लगीं —

देशी स्त्रियाँ खिल-खिलाकर हँस पडीं। तीन पँक्तियाँ गाकर माँ चुप हो गयीं। बरामदा तालियों से गूँज उठा। साहब तालियाँ पीटना बंद ही न करते थे। शामनाथ की खीझ प्रसन्नता और गर्व में बदल उठी थी। माँ ने पार्टी में नया रंग भर दिया था।

तालियाँ थमने पर साहब बोले — पंजाब के गाँवों में दस्तकारी क्या है ?

शामनाथ खुशी में झूम रहे थे । बोले — ओ, बहुत कुछ, साहब ! मैं आपको एक सेट उन चिज़ों का भेंट करूँगा। आप उन्हें देखकर खुश होंगे।

मगर साहब ने सिर हिलाकर अंग्रेज़ी में फिर पूछा — नहीं, मैं दुकानों की चीज़ नहीं मांगता। पंजाबियों के घरों में क्या बनता है, औरतें खुद क्या बनाती हैं?

शामनाथ कुछ सोचते हुए बोले — लड़कियाँ गुड़ियाँ बनाती हैं — औरतें फुलकारियाँ बनाती हैं।

— फुलकारी क्या ?

शामनाथ फुलकारी का मतलब समझाने की असफल चेष्टा करने के बाद माँ से बोले — क्यों, माँ, कोई पुरानी फुलकारी घर में है ?

माँ चुपचाप अंदर गयीं और अपनी पुरानी फुलकारी उठा लायीं।

साहब बड़ी रुचि से फुलकारी देखने लगे। पुरानी फुलकारी थी। जगह-जगह से उसके तागे टूट रहे थे और कपड़ा फटने लगा था। साहब की रुचि देखकर शामनाथ बोले — यह फटी हुई है, साहब, मैं आपको नयी बनवा दूँगा। माँ बना देंगी। क्यों, माँ, साहब को फुलकारी बहुत पसंद है, इन्हें ऐसी ही एक फुलकारी बना दोगी न ?

माँ चुप रहीं। फिर डरते-डरते धीमे-से बोलीं — अब मेरी नज़र कहाँ है, बेटा। बूढ़ी आँखें क्या देखेंगी ?

मगर माँ का वाक्य बीच में ही तोड़ते हुए शामनाथ साहब से बोले — वह ज़रूर बना देंगी। आप उसे देखकर खुश होंगे।

साहब ने सिर हिलाया, धन्यवाद किया और हल्के-हल्के झूमते हुए खाने की मेज़ की ओर बढ़ गये। बाकी मेहमान भी उनके पीछे-पीछे हो लिये।

जब मेहमान बैठ गये और माँ पर से सब की आँखें हट गयीं तो माँ धीरे-से कुर्सी पर से उठीं और सबसे नज़रें बचाती हुई अपनी कोठरी में चली गयीं।

मगर कोठरी में बैठने की देर थी कि आँखों से छल-छल आँसू बहने लगे। वे दुपट्टे से बार-बार उन्हें पोंछतीं, पर वे बार-बार उमड़ आते जैसे बरसों का बाँध तोड़कर उमड़ आये हों। माँ ने दिल को बहुतेरा समझाया, हाथ जोड़े, भगवान का नाम लिया, बेटे के चिरायु होने की प्रार्थना की। बार-बार आँखें बंद कीं, मगर आँसू जैसे बरसात के पानी की तरह थमने में ही न आते थे।

* * * *

आधी रात का वक्त होगा। मेहमान खाना खाकर एक-एक करके जा चुके थे। माँ दीवार से सटकर बैठीं, आँखें फाड़े दीवार को देखे जा रही थीं। घर के वातावरण में तनाव ढीला पड़ चुका था। मुहल्ले की निस्तब्धता शामनाथ के घर पर भी छा चुकी थी, केवल रसोई में प्लेटों के खनकने की आवाज़ आ रही थी। तभी सहसा माँ की कोठरी का दरवाज़ा ज़ोर से खटकने लगा।

— माँ दरवाज़ा खोलो।

माँ का दिल बैठ गया। हड़बड़ाकर उठ बैठीं। क्या मुझसे फिर कोई भूल हो गयी है ? माँ कितनी देर से अपनी आपको कोस रही थीं कि क्यों उन्हें नींद आ गयी, क्यों वह ऊँघने लगीं। क्या बेटे ने अभी तक क्षमा नहीं की ? माँ उठीं और काँपते हाथों से दरवाज़ा खोल दिया।

दरवाज़ा खुलते ही शामनाथ झूमते हुए आगे बढ़ आये और माँ को आलिंगन में भर लिया।

— ओ अम्मी ! तुम ने तो आज ऐसा रंग ला दिया। . . . . . साहब तुम से इतना खुश हुआ कि क्या कहूँ। ओ अम्मी ! अम्मी !

माँ की छोटी-सी काया सिमट कर बेटे के आलिंगन में छिप गयी। माँ की आँखों में फिर आँसू आ गये। उन्हें पोंछती हुई धीरे - से बोलीं — बेटा, तुम मुझे हरिद्वार भेज दो। मैं कब से कह रही हूँ। शामनाथ का झूमना सहसा बंद हो गया और उनकी पेशानी पर फिर तनाव के बल पड़ने लगे। उनकी बाँहें माँ के शरीर पर से हट आयीं।

— क्या कहा, माँ ? यह कौन-सा राग तुमने फिर छेड़ दिया? शामनाथ का क्रोध बढ़ने लगा था, बोलते गये — तुम मुझे बदनाम करना चाहती हो माँ ? तुम जानबूझकर हरिद्वार जा बैठना चाहती हो, ताकि दुनिया कहे कि बेटा माँ को अपने पास नहीं रख सकता।

— नहीं बेटा, अब तुम अपनी बहू के साथ जैसा मन चाहे रहो। मैं ने अपना खा-पहन लिया। अब यहाँ क्या करूँगी। जो थोड़े दिन जिम्दगानी के बाकी हैं, भगवान का नाम लूँगी। तुम मुझे हरिद्वार भेज दो।

— तुम चली जाओगी तो फुलकारी कौन बनाएगा ? साहब से तुम्हारे सामने ही फुलकारी देने का इकरार किया है।

— मेरी आँखें अब नहीं हैं, बेटा, जो फुलकारी बना सकें। तुम कहीं और से बनवा लो। बनी-बनायी ले लो।

— माँ, तुम मुझे धोखा देकर यूँ चली जाओगी ? मेरा बनता काम बिगाड़ोगी ? जानती नहीं, साहब खुश होगा, तो मुझे तरक्की मिलेगी।

माँ चुप हो गयीं। फिर बेटे की मुँह की ओर देखते हुए बोलीं — क्या तेरी तरक्की होगी ? क्या साहब तेरी तरक्की कर देगा ? क्या उसने कुछ कहा है ?

— कहा नहीं, मगर देखती नहीं, कितना खुश हो गया है। कहता था, जब तेरी माँ फुलकारी बनाना शुरू करेंगी, तो मैं देखने आऊँगा कि कैसे बनाती हैं? जो साहब खुश हो गया, तो मुझे इससे बड़ी नौकरी भी मिल सकती है, जो बड़ा आफिसर बन सकता हूँ!

माँ के चेहरे का रंग बदलने लगा, धीरे-धीरे उनका झुर्रियों भरा मुँह खिलने लगा, आँखों में हल्की-हल्की चमक आने लगी।

— तो तेरी तरक्की होगी, बेटा?

तरक्की यूँ ही हो जाएगी? साहब को खुश रखूँगा तो कुछ करेगा, वरना उसकी खिदमत करने वाले और थोड़े हैं?

— तो मैं बना दूँगी, बेटा, जैसा बन पड़ेगा, बना दूँगी।

और माँ दिल-ही दिल में फिर बेटे के उज्वल भविष्य की कामनाएँ करने लगीं। और मिस्टर शामनाथ — अब सो जाओ, माँ! — कहते हुए तनिक लड़खड़ाते हुए अपने कमरे की ओर घूम गये।

अभ्यास

शब्दार्थ :—

फेहरिस्त	=	सूची
मुकम्मल	=	पूर्ण
अड़चन	=	बाधा
खर्राटा	=	वह शब्द जो सोते समय नाक से निकलता है।
झटकना	=	ज़ोर से हिलाना
सुमीता	=	सुगमता
खडाऊँ	=	മെതിയടി, Sandals.
उधेड़बुन	=	सोच-विचार
तरतीब	=	क्रम
पल्ला	=	कपड़े का छोर
ताल्लुक	=	संबंध
लंडूरा	=	असहाय, दीन
हिदायत	=	മുന്നറിയിപ്പ്, Warning
टप्पा	=	ഒരുതരം ഗാനം, A kind of song.
लहजा	=	स्वर
फुलकारी	=	ചിത്രത്തയ്യൽ, Embroidery
इकरार	=	വാഗ്ദാനം, Promise
खिदमत	=	സേവനം, Service
खीझ	=	गुस्सा

प्रश्न :—

1. शामनाथ ने चीफ़ की दावत की कैसी तैयारी की?
2. माँ को मेहमानों से छिपाने के लिए शामनाथ ने क्या प्रबंध किया?
3. पार्टी के बीच बरामदे में पहुँचते ही शामनाथ क्यों ठिठक गया?
4. अंग्रेज़ी अफसर ने शामनाथ की माताजी के साथ कैसा व्यवहार किया?
5. शामनाथ की खीझ प्रसन्नता और गर्व में बदल उठी। कब?
6. शामनाथ की माँ क्यों हरिद्वार जाना चाहती है?

○

काबुलीवाला

मेरी पाँच बरस की लड़की मिनि से घड़ीभर भी बोले बिना नहीं रहा जाता। एक दिन वह सवेरे-सवेरे ही बोली, "बाबूजी, रामदयाल दरबान है न, वह 'काक' को 'कौआ' कहता है। वह कुछ जानता नहीं न, बाबूजी ?" मेरे कुछ कहने से पहले ही उसने दूसरी बात छेड़ दी। "देखो, बाबूजी, भोला कहता है — आकाश में हाथी सूँड़ से पानी फेंकता है, इसी से वर्षा होती है। अच्छा बाबूजी, भोला झूठ बोलता है, है न ?" और फिर वह खेल में लग गयी।

मेरा घर सड़क के किनारे है। एक दिन मिनी मेरे कमरे में खेल रही थी। अचानक वह खेल छोड़कर खिड़की के पास दौडी गयी और बड़े ज़ोर से चिल्लाने लगी, "काबुलीवाले, ओ काबुलीवाले !"

कंधे पर मेवों की झोली लटकाए, हाथ में अंगूर की पिटारी लिए एक लंबा-सा काबुली धीमी चाल से सड़क पर जा रहा था। जैसे ही वह मकान की ओर आने लगा, मिनी जान लेकर भीतर भाग गयी। उसे डर लगा कि कहीं वह उसे पकड़ न ले जाए। उसके मन में यह बात बैठ गयी थी कि काबुलीवाले की झोली के अंदर तलाश करने पर उस जैसे और भी दो-चार बच्चे मिल सकते हैं।

काबुली ने मुस्कराते हुए मुझे सलाम किया। मैं ने उससे कुछ सौदा खरीदा। फिर वह बोला, "बाबू साहब, आपकी लड़की कहाँ गयी ?"

मैं ने मिनी के मन से डर दूर करने के लिए उसे बुलवा लिया। काबुली ने झोली से किशमिश और बादाम निकालकर मिनी को देना चाहा पर उसने कुछ न लिया। डरकर वह मेरे घुटनों से चिपट गयी। काबुली से उसका पहला परिचय इस तरह हुआ। कुछ दिन बाद किसी ज़रूरी काम से मैं बाहर जा रहा था। देखा कि मिनी काबुली से खूब बातें कर रही है और काबुली मुस्कुराता हुआ सुन रहा है। मिनी की झोली बादाम-किशमिश से भरी हुई थी। मैं ने काबुली को अठन्नी देते हुए कहा, "इसे यह सब क्यों दे दिया ? अब मत देना।" फिर मैं बाहर चला गया।

कुछ देर तक काबुली मिनी से बातें करता रहा। जाते समय वह अठन्नी मिनी की झोली में डालता गया। जब मैं घर लौटा तो देखा कि मिनी की माँ काबुली से अठन्नी लेने के कारण उस पर खूब गुस्सा हो रही है।

काबुली प्रतिदिन आता रहा। उसने किशमिश, बादाम दे-देकर मिनी के छोटे से हृदय पर काफ़ी अधिकार जमा लिया। दोनों में वही - वही बातें होतीं और वे खूब हँसते। रहमत काबुली को देखते ही मेरी लड़की हँसती हुई पूछती, "काबुलीवाले, ओ काबुलीवाले ! तुम्हारी झोली में क्या है ?"

रहमत हँसता हुआ कहता, "हाथी"। फिर वह मिनी से कहता, "तुम ससुराल कब जाओगी ?"

इस पर उलटे वह रहमत से ही पूछती, "तुम ससुराल कब जाओगे ?"

रहमत अपना मोटा घूँसा तानकर कहता "हम ससुर को मारेगा।" इस पर मिनी खूब हँसती।

हर साल सर्दियों के अंत में काबुली अपने देश चला जाता। जाने से पहले वह सब लोगों से पैसा वसूल करने में लगा रहता। उसे घर-घर घूमना पड़ता, मगर फिर भी प्रतिदिन वह मिनी से एक बार मिल जाता।

एक दिन सवेरे मैं अपने कमरे में बैठा कुछ काम कर रहा था। ठीक उसी समय सड़क पर बड़े ज़ोर का शोर सुनाई दिया। देखा तो अपने उस रहमत को दो सिपाही बाँधे लिए जा रहे हैं। रहमत के कुरते पर खून के दाग हैं और सिपाही के हाथ में खून से सना हुआ छुरा।

कुछ सिपाही से और कुछ रहमत के मुँह से सुना कि हमारे पड़ोस में रहनेवाले एक आदमी ने रहमत से एक चादर खरीदी। उसके कुछ रुपये उस पर बाकी थे,

जिन्हें देने से उसने इनकार कर दिया था। बस, इसी पर दोनों में बात बढ़ गयी, और काबुली ने उसे छुरा मार दिया।

इतने में "काबुलीवाले, काबुलीवाले', कहती हुई मिनी घर से निकल आयी। रहमत का चेहरा क्षणभर के लिए खिल उठा। मिनी ने आते ही पूछा, "तुम ससुराल जाओगे ?" रहमत ने हँसकर कहा, "हाँ, वहीं तो जा रहा हूँ।"

रहमत को लगा कि मिनी उसके उत्तर से प्रसन्न नहीं हुई। तब उसने घूँसा दिखाकर कहा, "ससुर को मारता पर क्या करूँ, हाथ बँधे हुए हैं।"

छुरा चलाने के अपराध में रहमत को कई साल की सज़ा हो गयी।

काबुली का ख्याल धीरे-धीरे मन से बिलकुल उतर गया और मिनी भी उसे भूल गयी।

कई साल बीत गये।

आज मेरी मिनी का विवाह है। लोग आ-जा रहे हैं। मैं अपने कमरे में बैठा हुआ खर्च का हिसाब लिख रहा था। इतने में रहमत सलाम करके एक ओर खड़ा हो गया।

पहले तो मैं उसे पहचान ही न सका। उसके पास न तो झोली थी न चेहरे पर पहले जैसी खुशी। अंत में उसकी ओर ध्यान से देखकर पहचाना कि यह रहमत है।

मैं ने पूछा, "क्यों रहमत, कब आए ?"

"कल ही शाम को जेल से छूटा हूँ," उसने बताया।

मैं ने उससे कहा, "आज हमारे घर में एक ज़रूरी काम है, मैं उसमें लगा हुआ हूँ। आज तुम जाओ, फिर आना।"

वह उदास होकर जाने लगा। दरवाज़े के पास रुककर बोला, "ज़रा बच्ची को नहीं देख सकता ?"

शायद उसे यही विश्वास था कि मिनी अब भी वैसी ही बच्ची बनी है। वह अब भी पहले की तरह "काबुलीवाले, ओ काबुलीवाले" चिल्लाती हुई दौड़ी चली आएगी। उन दिनों की उस पुरानी हँसी और बातचीत में किसी तरह की रुकावट न होगी। मैं ने कहा, "आज घर में बहुत काम है। आज उस से मिलना न हो सकेगा।"

वह कुछ उदास हो गया और सलाम करके दरवाज़े से बाहर निकल गया। मैं सोच ही रहा था कि उसे वापस बुलाऊँ। इतने में वह स्वयं ही लौट आया और बोला, "यह थोड़ा सा मेवा बच्ची के लिए लाया था। उसको दे दीजिएगा।"

मैं ने उसे पैसे देने चाहे पर उसने कहा, "आप की बहुत मेहरबानी है बाबू साहब, पैसे रहने दीजिए।" फिर ज़रा ठहरकर बोला, "आपकी जैसी मेरे भी एक बेटी है। मैं उसकी याद कर-करके आप की बच्ची के लिए थोड़ा सा मेवा ले आया करता हूँ। मैं यहाँ सौदा बेचने नहीं आता।"

उसने अपने कुरते की जेब में हाथ डालकर कागज़ का एक टुकड़ा निकाला। देखा कि कागज़ पर छोटे-से हाथ के नन्हे से पंजे की छाप है। हाथ में थोड़ी सी कालिख लगाकर कागज़ पर उसकी छाप ले ली गयी है। अपनी बेटी की इस याद को छाती से लगाकर रहमत हर साल कलकत्ते के गली-कूचों में सौदा बेचने आता है।

देखकर मेरी आँखें भर आयीं। सब कुछ भूलकर उसी समय मिनी को बाहर बुलाया। विवाह की पूरी पोशाक और गहने पहने मिनी शरम से सिकुड़ी मेरे पास आकर खड़ी हो गयी।

उसे देखकर रहमत काबुली पहले तो सकपका गया। उससे पहले जैसी बातचीत करते न बना। बाद में वह हँसता हुआ बोला, "लल्ली, सास के घर जा रही है क्या ?"

मिनी अब सास का अर्थ समझती थी। मारे शरम के उसका मुँह लाल हो उठा।

मिनी के चले जाने पर एक गहरी साँस भरकर रहमत वहीं ज़मीन पर बैठ गया। उसकी समझ में यह बात एकाएक स्पष्ट हो उठी कि उसकी बेटी भी इतने दिनों में बड़ी हो गयी होगी। इन आठ वर्षों में उसका क्या हुआ, कौन जाने ? वह उसकी याद में खो गया।

मैं ने कुछ रुपये निकालकर उसके हाथ में रख दिये और कहा, "रहमत, तुम अपनी बेटी के पास देश चले जाओ।"

अभ्यास

शब्दार्थ :—

अठन्नी	=	आठ आने का सिक्का
कंधा	=	തോൾ, Shoulder
मेवा	=	सूखे फल
पिटारी	=	കൂട, Small basket
घुटना	=	കാൽമുട്ട്, Knee
दरवान	=	चौकीदार
घूँसा	=	മുഷ്ടി
छुरा	=	കഠാരി, Big knife
हिसाब	=	വരവു ചെലവു കണക്ക്, Account
सौदा	=	खरीदने या बेचने की चीज़ें
कालिख	=	स्याही
सकपकाना	=	घबराना

प्रश्न :—

1. काबुलीवाला कौन था ? वह मिनी के घर क्यों आया ?
2. काबुलीवाले से मिनी का परिचय किस तरह हुआ ?
3. काबुलीवाला मिनी को बहुत प्यार-दुलार करता था । क्यों ?
4. मिनी को विवाह की पोशाक पहने देख काबुलीवाला क्यों सकपका गया ?
5. मिनी के पिता ने रहमत से अपने घर जाने को क्यों कहा ?
6. रहमत को क्यों जेल की सजा मिल गयी ?
7. मिनी के पिता के दिये पैसे अस्वीकार करते हुए काबुलीवाले ने क्या कहा ?

○

7 स्नेह का दण्ड

सेठ वंशीधर जब मारवाडा से कानपुर आये थे तो अपनी छोटी-सी हवेली अपनी एक वृद्धा चाची के सुपुर्द कर आये थे। उस हवेली के अतिरिक्त उनके पास कुछ था भी नहीं।

कानपुर में आकर उन्होंने लाख हाथ-पैर मारे, किन्तु लक्ष्मी ने उनका साथ न दिया। पाँच सौ रुपये की मुनीमी करते-करते वे परलोकवासी हो गये।

किन्तु उनके मरते ही उनके दोनों बेटों ने — शिवशंकर तथा रामशंकर ने अल्पकाल में ही सोने की दीवारें खडी कर दी।

दोनों भाइयों में परस्पर बडा स्नेह था तथा एक दूसरे के लिए ममता थी। बडे भाई शिवशंकर चित्त के उदार तथा सदा सार्वजनिक कार्यों में मस्त रहनेवाले आदमी थे। शीघ्र ही व्यापार और सम्पत्ति की कुंजी छोटे भाई रामशंकर के हाथों में सौंप कर वे निश्चिन्त हो गये। उन्हें अब यह भी न मालूम रहता कि कितनी आमदनी है, और कितना खर्च। छोटा भाई रामशंकर बडे भाई को सदा पितृ-तुल्य ही मानता था। यही कारण था कि अथाह वैभव तथा सम्पत्ति भी दोनों भाइयों के प्रेम व स्नेह में बाधक न बन सकी।

शिवशंकर का परिवार बडा था — तीन पुत्र तथा दो पुत्रियाँ। रामशंकर के केवल एक पुत्री ही थी। सभी बच्चे शिवशंकर को ही पिता समझते थे। सरला यदि भूलकर भी पिता के पास पहुँच जाती, तो रामशंकर सदा यह कह कर अपने पास से हटा देते कि "मुझे तंग मत करो, बाबुजी के पास जाओ।"

सरला शिवशंकर ही को बाबूजी कहती थी। सगे सम्बन्धी तथा मित्र-बन्धु उनके घर की इस एकता पर ईर्ष्या करते थे। भूल से भी यदि कोई रामशंकर से कह बैठता कि 'तुम्हारा खर्च ही क्या है, रामशंकर; जो कुछ खर्च है वह तो तुम्हारे भाई तथा उनके परिवार का है।' तो रामशंकर फौरन उत्तर देता, 'तो क्या हुआ? यह सबकुछ तो भाई साहब का है। मैं तो सिर्फ मुनीम हूँ, उनका।'

कोई व्यंग्य करता कि तुम दोनों की जोडी तो राम-भरत की जैसी है। तो रामशंकर फौरन हंस कर उत्तर देता, "न-न-न मुझे भरत-वरत नहीं बनना है। मुझे तो लक्ष्मण हीं बनना है। मुझे तो लक्ष्मण ही बना रहने दो।"

लोग चुप हो जाते।

किन्तु दिन सदा एक से नहीं जाते। कोई किसी को सुखी नहीं देख सकता। अपरिवर्तनवाद तो ईश्वर को भी सहच नहीं। शिवशंकर के घर को भी दुर्भाग्य तिरछी नज़र से देखने लगा था।

बात यह थी कि रामशंकर के ससुरालवालों की दृष्टि अब इस ओर घूमने लगी और वे रामशंकर की सम्पत्ति को ललचाई दृष्टि से देखने लगे थे। उन्हें अब यह आशा न रही कि रामशंकर की और कोई सन्तान होगी। रामशंकर के साले श्रीपत बडे ही चतुर तथा दूरदर्शी थे। उन्होंने देखा कि उनके तनिक से प्रयास से सम्पत्ति का बडा भारी भाग उनके घर आ सकता है। उन्होंने अपनी बहन को भडकाना शुरू कर दिया।

स्त्री-बुद्धि तो संसार-प्रसिद्ध ही है। कमला ने अपने भाई की बात को ही उचित समझकर पति के कान भरने शुरू कर दिये। पहिले तो रामशंकर को कुछ आश्चर्य हुआ, किन्तु जब कमला ने कहा कि 'आप आगा-पीछा कुछ नहीं सोचते। मैं क्या आपके भतीजों की गुलामी करती फिरूँगी? तो रामशंकर के भी कपट-कपाट खुलने से लगे।

एक दिन कमला ने कहा, 'अपने यदि पुत्र न हो तो क्या गोद नहीं लिया जा सकता?

रामशंकर ने कहा, "घर में बच्चों की कमी है क्या ? सब अपने ही तो बच्चे हैं।"

मुँह बनाकर कमला ने कहा, "यह सब मनको समझाने की बातें हैं। अपना-अपना ही होता है।"

रामशंकर चुप रह गये।

धीरे-धीरे रामशंकर के घर पर ससुरालवालों का आगमन प्रारंभ हो गया। कमला ने अपने आठ वर्ष के भतीजे को बुलाकर अपने पास रख लिया। शिवशंकर उसे भी अपने ही बच्चों की भाँति प्यार करने लगे। थोडे दिनों में कमला का एक बीस वर्ष का भाई आकर दूकान में काम सीखने लगा। यद्यपि रामशंकर को यह सब पसन्द न था, फिर भी वे चुप ही रहे। शिवशंकर का इन सब बातों से कोई सम्बन्ध न था। वे तो अपने में ही मस्त रहते थे।

एक दिन शिवशंकर ने देखा कि रामशंकर के बड़े साले और उनकी पत्नी भी आकर उन्हीं के घर में ठहर गयी। धीरे-धीरे उनका घर रामशंकर के रिश्तेदारों से भरने लगा। उनकी समझ में ही न आता था कि आखिर यह सब क्या है ? शिवशंकर की पत्नी सीधी-सादी गृहस्थ थी। वे अपने बच्चों मे ही व्यस्त और निमग्न रहती थी।

एक दिन रात्रि में श्रीपत ने अपनी बहन से कहा, "देख कमला, अब हम यहाँ अधिक नहीं रुक सकते। रामशंकर बाबू न जाने किस उलट-फेर में पडे हैं ? तू उनसे साफ-साफ बात कर। आखिर हम लोग कबतक यहाँ पड़े रहेंगे ?"

कमला कुछ सोचकर बोली, "उन्होंने आजकल ही में सोचकर जवाब देने को कहा है। मेरी खातिर आप थोडी तकलीफ और बरदाश्त कीजिए।"

हंसकर श्रीपत ने कहा, 'रामशंकर बडे बुद्धु हैं, आखिर इस बात में सोचना ही क्या है ? हम सब तो मदद केलिए हैं ही।'

और बात यहाँ तक पहुँच गयी कि दूसरे दिन शाम को जब शिवशंकर दूकान पहुँचे तो रामशंकर ने उनसे कहा, "दादा, आप से कुछ बात करनी है।"

आश्चर्य के साथ शिवशंकर ने पूछा, 'क्या बात है, कहो न ? रामशंकर ने कहा, "ज़रा अन्दर कमरे में चलिए।" शिवशंकर ने समझा कि कोई व्यवसाय संबन्धी खास बात होगी। वे उठकर दूकान के अन्दर वाले कमरे में चले गये।

रामशंकर ने मानों सारा साहस एकत्र करके कहा, 'मेरा बंटवारा कर दीजिए, दादा। मैं अब अलग रहना चाहता हूँ।' शिवशंकर के हृदय में यदि कोई छुरा भी आरपार कर देता तो उन्हें इतना दुःख न होता, जितना रामशंकर की इस बात से हुआ। वे थोडी देर तक स्तब्ध होकर चुप रहे, फिर उनके मुँह से निकला, 'मैं तुम्हारी बातों का मतलब नहीं समझा, रामशंकर।"

रामशंकर का आगे बात करने का साहस न होता था। वह चुप खडा रहा। शिवशंकर धीरे से बोले, "मैं नहीं जानता कि आखिर तुम बंटवारा क्यों चाहते हो ? क्या मेरे किसी व्यवहार से तुमको कष्ट हुआ ? साफ-साफ कहो न ?"

अब रामशंकर का मुँह खुला, 'आप से मेरी कोई शिकायत नहीं है। मगर . . . . "

और वह चुप हो गया। शिवशंकर ने कहा, 'तुम्हें सब कुछ खोल कर ही मुझसे कहना चाहिए।' रामशंकर ने अब साहस करके कहना शुरू किया, "बात यह है, दादा — कि आप जब तक है, तब तक मुझे किसी बात की चिन्ता नहीं है, किन्तु बाद में भाभी तथा बच्चों से मेरी पटी, न पटी . . . "

शिवशंकर थोड़ी देर तक चुप रहे, फिर बोले, "तो आखिर फिर तुम क्या चाहते हो ? क्या बिना बंटवारा किये यह समस्या हल नहीं हो सकती ?"

रामशंकर की मुँह से निकला, "आप मेरा भाग अलग कर दीजिए।" शिवशंकर समझ गये कि भाई पर गहरा रंग चढ़ गया है। कुछ सोच समझकर बोले, "तो बिना बंटवारे के मेरा और तुम्हारा कोई भी समझौता नहीं हो सकता क्या ?"

रामशंकर ने अविलम्ब उत्तर दिया "बंटवारा कर दीजिए।" शिवशंकर ने एक साँस ली और चुप रहे। रामशंकर खड़ा रहा। अन्त में निस्तब्धता भंग करते हुए शिवशंकर ने कहा, 'अच्छी बात है। मैं परसों तक तुमको सोच कर बतलाऊँगा।'

रामशंकर ने रटे हुए तोते की भाँति फिर कहा, 'आप मेरा बंटवारा कर दीजिए।'

दृढ़ता के स्वर में शिवशंकर ने कहा, 'अच्छी बात है। मैं बंटवारा ही करूँगा।'

दोनों बाहर जाने लगे। रुककर शिवशंकर ने कहा, "तो क्या बंटवारे के लिए ही तुमने घर पर इतनी भीड़ लगा रखी है ? यह बात तो मेरी समझ में आज ही आई। मेरा और तुम्हारा बंटवारा होगा, तब फिर क्या ये लोग़ भी कोई बंटवारा करने आये हैं ?"

रामशंकर लजाकर चुप हो गया। वह पितृ-तुल्य भाई से ऐसी बातें कर के शर्म के मारे ज़मीन में गड़ा जा रहा था।

तीसरे दिन रामशंकर को भाई ने अपने कमरे में बुला भेजा। रामशंकर के पैर काँप रहे थे, किन्तु वह तो कठपुतली था। संकेतों पर नाच रहा था।

बडे प्रेम से छोटे भाई को पास बिठलाते हुए शिवशंकर ने कहा, "मैं ने बंटवारे का कागज़ तैयार कर लिया है। मैं तुम्हें सुनाये देता हूँ। इसमें जो भी हेर-फेर तुम करना चाहो, कर सकते हो।"

रामशंकर बोल उठा, 'किन्तु यदि आप किसी वकील को बुला — बीच ही में शिवशंकर बोल उठे 'मेरी समझ से इन बंटवारे में किसी भी वकील की ज़रूरत न पड़ेगी। हाँ, अगर बाद में ऐसी ज़रूरत पड़े तो तुम वकील से सलाह ले सकते हो।'

रामशंकर चुप हो गया। शिवशंकर ने जेब से एक कागज़ निकाल कर रामशंकर की ओर फेंक दिया और कहा, "पहले इसे पढ़कर देख लो।"

रामशंकर धड़कते हृदय से पढ़ने लगा। उसमें लिखा था :—

"वह सारी चल और अचल सम्पत्ति जिसके हम दोनों भाई — शिवशंकर और रामशंकर पूरी तरह से मालिक हैं, मैं, शिवशंकर, वह सारी सम्पत्ति जो मेरे हिस्से की है तथा जिसका मैं सोलहों आने मालिक हूँ, अपने भाई रामशंकर को देता हूँ। यह सारी सम्पत्ति मेरी ही अर्जित की हुई है, अतएव मेरे पुत्रों तथा वारिसों का उस पर कभी कोई हक नं होगा। अपने ग्राम में जो मेरे पूर्वजों की हवेली है, उस पर मेरा ही अधिकार रहेगा। सारी सम्पत्ति के बदले में केवल वही पुरानी पूर्वजों की हवेली लेना चाहता हूँ। उस पर मेरा तथा मेरे वारिसों का अधिकार रहेगा। अपने गुजारे के लिए, मैं आजीवन केवल पच्चास रुपया ही इस सारी सम्पत्ति से पाने का अधिकारी रहूँगा। शेष पर मेरा कोई अधिकार न रहेगा। रामशंकर को यह अधिकार रहेगा कि वह मेरे पुत्रों को चाहे कुछ दे या न दे। कल से ही इस सारी सम्पत्ति पर रामशंकर का कब्जा हो जाएगा और मैं उसी समय इस घर को छोड़ दूँगा।"

"शिवशंकर"।

रामशंकर पढकर सन्न रह गया। उसकी आँखें खुल गयीं। अपने देव-तुल्य भाई का सब कुछ पाकर भी वह प्रसन्न न था। वह क्षण भर चुप खड़ा रहा, फिर भाई के चरणों को पकड कर हिचकियाँ भर कर रोने लगा।

उसे उठा कर हृदय से लगाते हुए शिवशंकर ने कहा, "तुम व्यर्थ में दुःखी होते हो रामशंकर। जिस सम्पत्ति को मैं ने कभी नहीं अपना समझा वह आज मेरी हो ही कैसे सकती है। मैं तो अपने ग्राम में बडी ही प्रसन्नता से रह सकूँगा। ये बच्चे सब तुम्हारे हैं। चाहे रखना चाहे निकाल देना। अच्छा अब बात समाप्त हुई।"

रामशंकर रोया, गिड़गिड़ाया तथा प्रार्थना की, किन्तु शिवशंकर इस कागज़ को इंच भर भी बदलने को तैयार न हुए। तीसरे दिन ही सबकुछ रामशंकर को सौंप कर वे ग्राम चले गये।

बहुत दिनों बाद वंशीधर सेठ की पूर्वजों की कोठी में आज फिर चिराग जल रहा था।

अभ्यास

शब्दार्थ :—

भड़काना	=	उत्तेजित करना
बंटवारा	=	विभाजन
हवेली	=	बड़ा मकान
मुनीमी	=	हिसाब-किताब रखने का काम
ईर्ष्या	=	डाह, जलन
फौरन	=	तुरंत, झटपट

प्रश्न :—

1. शिवशंकर का स्वभाव कैसा था ?
2. शिवशंकर के प्रति रामशंकर के मन में ईर्ष्या पैदा करने के लिए सगे संबन्धियों ने क्या किया ?
3. श्रीपत ने अपनी बहन कमला को भड़काना क्यों शुरू कर दिया ?
4. रामशंकर के कपट-कपाट कब खुलने से लगे ?
5. शिवशंकर थोड़ी देर तक क्यों स्तब्ध होकर चुप रहे ?
6. शिवशंकर ने अपनी समपत्ति का बंटवारा कैसे किया ?
7. रामशंकर को सांत्वना देते हुए शिवशंकर ने क्या कहा ?

○

8

भोलाराम का जीव

ऐसा कभी नहीं हुआ था।

धर्मराज लाखों वर्षों से असंख्य आदमियों को कर्म और सिफारिश के आधार पर स्वर्ग या नरक में निवास स्थान 'अलाट' करते आ रहे थे। पर ऐसा कभी नहीं हुआ था।

सामने बैठे चित्रगुप्त बार-बार चश्मा पोंछ, बार-बार थूक से पन्ने पलट, रजिस्टर पर रजिस्टर देख रहे थे। गलती पकड़ में ही नहीं आ रही थी। आखिर उन्होंने खीझकर रजिस्टर इतने ज़ोर से बंद किया कि मक्खी चपेट में आ गई। उसे निकालते हुए वे बोले — 'महाराज, रिकार्ड सब ठीक है। भोलाराम के जीव ने पाँच दिन पहले देह त्यागी और यमदूत के साथ इस लोक के लिए रवाना भी हुआ, पर यहाँ अभी तक नहीं पहुँचा।'

धर्मराज ने पूछा — और वह दूत कहाँ है ?

'महाराज, वह भी लापता है।'

इसी समय द्वार खुले और एक यमदूत बड़ा बदहवास वहाँ आया। उसका मौलिक कुरूप चेहरा परिश्रम, परेशानी और भय के कारण और भी विकृत हो गया था। उसे देखते ही चित्रगुप्त चिल्ला उठे — अरे, तू कहाँ रहा इतने दिन ? भोलाराम का जीव कहाँ है ?

यमदूत हाथ जोड़कर बोला, दयानिधान, मैं कैसे बतलाऊँ कि क्या हो गया ? आज तक मैं ने धोखा नहीं खाया था, पर भोलाराम का जीव मुझे चकमा दे गया। पाँच दिन पहले जब जीव ने भोलाराम की देह को त्यागा, तब मैं ने उसे पकड़ा और इस लोक की यात्रा आरंभ की। नगर के बाहर ज्यों ही मैं उसे लेकर तीव्र-वायु तरंग पर सवार हुआ त्यों ही वह मेरी चंगुल से छूट कर न जाने कहाँ गायब हो गया। इन पाँच दिनों में मैं ने सारा ब्रह्मांड छान डाला, पर उसका कहीं पता नहीं चला।

धर्मराज क्रोध से बोला — मूर्ख, जीवों को लाते-लाते बूढ़ा हो गया, फिर भी एक मामूली बूढ़े आदमी के जीव ने तुझे चकमा दे दिया।

दूत ने सिर झुकाकर कहा — महाराज, मेरी सावधानी में बिलकुल कसर नहीं थी। मेरे इन अभ्यस्त हाथों से, अच्छे-अच्छे वकील भी नहीं छूट सके। पर इस बार तो कोई इन्द्रजाल ही हो गया।

चित्रगुप्त ने कहा — महाराज, आजकल पृथ्वी पर इस प्रकार का व्यापार बहुत चला है। लोग दोस्तों को कुछ चीज़ भेजते हैं और उसे रास्ते में ही रेलवेवाले उड़ा लेते हैं। हौज़री के पार्सलों के मौजे रेलवे अफ़सर पहनते हैं। मालगाड़ी के डब्बे के डब्बे रास्ते में कट जाते हैं। एक बात और हो रही है। राजनैतिक दलों के नेता विरोधी नेता को उड़ाकर बंद कर देते हैं। कहीं भोलाराम के जीव को भी तो किसी विरोधी ने मरने के बाद खराबी करने के लिए नहीं उड़ा दिया ?

धर्मराज ने व्यंग्य से चित्रगुप्त की ओर देखते हुए कहा — तुम्हारी भी रिटायर होने की उम्र आ गई। भला भोलाराम जैसे नगण्य, दीन आदमी से किसी को क्या लेना-देना ?

इसी समय कहीं से घूमते-घूमते नारद मुनि वहाँ आ गए। धर्मराज को गुमसुम बैठे देख बोले — "क्यों धर्मराज, कैसे चिंतित बैठे हो ? क्यों नरक में निवास-स्थान की समस्या अभी हल नहीं हुई ?"

धर्मराज ने कहा — "वह समस्या तो कभी की हल हो गई। नरक में पिछले सालों में बडे गुणी कारीगर आ गए हैं। कई इमारतों के ठेकेदार हैं, जिन्होंने पूरे पैसे लेकर रद्दी इमारतें बनाईं। बडे-बडे इंजीनियर भी आ गए हैं, जिन्होंने ठेकेदारों से मिलकर पंचवर्षीय योजनाओं का पैसा खाया। ओवरसीयर हैं, जिन्होंने उन मज़दूरों की हाज़िरी

भरकर पैसा हड़पा, जो कभी काम पर गए ही नहीं। इन्होंने बहुत जल्दी नरक में कई इमारतें तान दी हैं। वह समस्या तो हल हो गई, पर एक बड़ी विकट उलझन आ गई है। भोलाराम नाम के एक आदमी की पाँच दिन पहले मृत्यु हुई। उसके जीव को यह दूत यहाँ ला रहा था कि जीव इसे रास्ते में चकमा देकर भाग गया। इसने सारा ब्रह्मांड छान डाला, पर वह कहीं नहीं मिला। अगर ऐसा होने लगा, तो पाप-पुण्य का भेद ही मिट जाएगा।"

नारद ने पूछा — "उस पर इनकमटैक्स तो बकाया नहीं था? हो सकता है, उन लोगों ने रोक लिया हो।"

चित्रगुप्त ने कहा— 'इनकम होती तो टैक्स होता। भुखमरा था।'

नारद बोले— "मामला बड़ा दिलचस्प है। अच्छा मुझे उसका नाम, पता तो बताओ। मैं पृथ्वी पर जाता हूँ।"

चित्रगुप्त ने रजिस्टर देखकर बताया — "भोलाराम नाम था उसका। जबलपुर शहर में धमापुर मुहल्ले में नाले के किनारे एक डेढ़ कमरे के टूटे-फूटे मकान में वह परिवार समेत रहता था। उसकी एक स्त्री थी, दो लड़के और एक लड़की। उम्र लगभग साठ साल। सरकारी नौकर था। पाँच साल पहले रिटायर हो गया था। मकान का किराया उसने एक साल से नहीं दिया, इसलिए मकान-मालिक उसे निकालना चाहता था। इतने में भोलाराम ने संसार छोड़ दिया। आज पाँचवाँ दिन है। बहुत संभव है कि अगर मकान मालिक वास्तविक मकान-मालिक है, तो उसने भोलाराम के मरते ही, उसके परिवार को निकाल दिया होगा। इसलिए आपको परिवार की तलाश में काफ़ी घूमना पड़ेगा।"

माँ-बेटी के सम्मिलित क्रंदन से ही नारद भोलाराम का मकान पहचान गए।

द्वार पर जाकर उन्होंने आवाज़ लगाई — 'नारायन, नारायन। लड़की ने देखकर कहा — आगे आओ महाराज।

नारद ने कहा — "मुझे भिक्षा नहीं चाहिए। मुझे भोलाराम के बारे में कुछ पूछताछ करनी है। अपनी माँ को ज़रा बाहर भेजो बेटी।"

भोलाराम की पत्नी बाहर आयी। नारद ने कहा — "माता, भोलाराम को क्या बीमारी थी?"

"क्या बताऊँ? गरीबी की बीमारी थी। पाँच साल हो गए, पेंशन पर बैठे। पर पेंशन अभी तक नहीं मिली। हर दस-पन्द्रह दिन में एक दरख्वास्त देते थे, पर वहाँ से या तो जवाब आता ही नहीं था और आता, तो यही कि तुम्हारी पेंशन के मामले पर विचार हो रहा हैं। इन पाँच सालों में सब गहने बेचकर हम लोग खा गए। फिर बर्तन बिके। अब कुछ नहीं बचा था। फाके होने लगे थे। चिंता में घुलते-घुलते और भूखे मरते-मरते उन्होंने दम तोड़ दिया।"

नारद ने कहा— "क्या करोगी माँ? उनकी इतनी ही उम्र थी।"

ऐसा मत कहो महाराज। उम्र तो बहुत थी। पचास साठ रुपया महीना पेंशन मिलती तो कुछ और काम कहीं करके गुज़ारा हो जाता। पर क्या करें? पाँच साल नौकरी से बैठे हो गए और अभी तक एक कौड़ी नहीं मिली।

दुःख की कथा सुनने की फुर्सत नारद को थी नहीं। वे अपने मुद्दे पर आए "माँ, यह तो बताओ कि यहाँ किसी से उनका विशेष प्रेम था, जिसमें उनका जी लगा हो?"

पत्नी बोली — "लगाव तो महाराज, बाल बच्चों से ही होता है।"

"नहीं परिवार के बाहर भी हो सकता है। मेरा मतलब है किसी स्त्री . . ."

स्त्री ने गुर्रा कर नारद की ओर देखा। बोली हर कुछ मत बको महाराज, तुम साधू हो, उचक्के नहीं हो। ज़िंदगी भर उन्होंने किसी दूसरी स्त्री को आँख उठाकर नहीं देखा।

नारद हँस कर बोले — हाँ तुम्हारा यह सोचना ठीक ही है। यही हर अच्छी गृहस्थी का आधार है। अच्छा, माता मैं चला।

स्त्री ने कहा — महाराज आप तो साधु हैं, सिद्ध पुरुष हैं। कुछ ऐसा नहीं कर सकते कि उनकी रुकी हुई पेंशन मिल जाए। इन बच्चों का पेट कुछ दिन भर जाए।

नारद को दया आ गई थी। वे कहने लगे साधुओं की बात कौन मानता है ? मेरा यहाँ कोई मठ तो है नहीं। फिर भी मैं सरकारी दफ़तर में जाऊँगा और कोशिश करूँगा।

वहाँ से चलकर नारद सरकारी दफ़तर में पहुँचे। वहाँ पहले ही कमरे में बैठे बाबू से उन्होंने भोलाराम के केस के बारे में बातें कीं। उस बाबू ने उन्हें ध्यानपूर्वक देखा और बोला — "भोलाराम ने दरख्वास्तें तो भेजी थीं, पर उन पर वज़न नहीं रखा था। इसलिए कहीं उड़ गई होंगी।"

नारद ने कहा — "भई ये बहुत से पेपर वेट तो रखे हैं। इन्हें क्यों नहीं रख दिया ?"

बाबू हँसा — "आप साधु हैं। आपको दुनियादारी समझ में नहीं आती। दरख्वास्तें पेपर-वेट से नहीं दबतीं। खैर, आप उस कमरे में बैठे बाबू से मिलिए।"

नारद उस बाबू के पास गए। उसने तीसरे के पास भेजा। तीसरे ने चौथे के पास, चौथे ने पाँचवें के पास। जब नारद पच्चीस-तीस बाबुओं और अफ़सरों के पास घूम आए तब एक चपरासी ने कहा — "महाराज, आप क्यों इस झंझट में पड़ गए। आप अगर साल भर भी यहाँ चक्कर लगाते रहे, तो भी काम नहीं होगा। आप तो सीधे बड़े साहब से मिलिए। उन्हें खुशकर लिया, तो अभी काम हो जाएगा।"

नारद बड़े साहब के कमरे में पहुँचे। बाहर चपरासी ऊँघ रहा था, इसलिए उन्हें किसी ने छेड़ा नहीं। बिना विज़िटिंग कार्ड के आया देख, साहब बड़े नाराज़ हुए। बोले इसे कोई मंदिर-वंदिर समझ लिया है क्या ? घड़धड़ाते चले आए। चिट क्यों नहीं भेजी ?

नारद ने कहा — "कैसे भेजता ? चपरासी सो रहा है।"

"क्या काम है ?" साहब ने रौब से पूछा। नारद ने भोलाराम का पेंशन केस बतलाया।

साहब बोले — आप हैं वैरागी। दफ्तरों के रीति रिवाज़ नहीं जानते। असल में भोलाराम ने गलती की। भई, यह तो एक मंदिर है। यहाँ भी दान पुण्य करना पड़ता है। आप भोलाराम के आत्मीय मालूम होते हैं। भोलाराम की दरख्वास्ते उड़ रही हैं, उन पर वज़न रखिए।

नारद ने सोचा कि फिर यहाँ वज़न की समस्या खड़ी हो गई। साहब बोले — "भई सरकारी पैसे का मामला है। पेंशन का केस बीसों दफ़तरों में आता है। देर लग ही जाती है। बीसों बार एक ही बात को बीस जगह लिखना पड़ता है। तब पक्की होती है। जितनी पेंशन मिलती है, उतने की स्टेशनरी लग जाती है। हाँ जल्दी भी हो सकता है, मगर"— साहब रुके।

नारद ने कहा — "मगर क्या ?"

साहब ने कुटिल मुस्कान के साथ कहा — "मगर वज़न चाहिए। आप समझे नहीं। जैसे आपकी यह सुंदर वीणा है, इसका भी वज़न भोलाराम की दरख्वास्त पर रखा जा सकता है। मेरी लड़की गाना-बजाना सीखती है। यह मैं उसे दे दूँगा। साधु-संतों की वीणा से तो और अच्छे स्वर निकलते हैं।"

नारद अपनी वीणा छिनते देख ज़रा घबड़ाए। पर फिर संभलकर उन्होंने वीणा टेबिल पर रख कर कहा — "यह लीजिए। अब ज़रा जल्दी उसकी पेंशन का आर्डर निकाल दीजिए।"

साहब ने प्रसन्नता से उन्हें कुरसी दी, वीणा को एक कोने में रखा और घंटी बजाई। चपरासी हाज़िर हुआ।

साहब ने हुक्म दिया — "बड़े बाबू से भोलाराम के केस की फाइल लाओ।"

थोड़ी देर बाद चपरासी भोलाराम की सौ-डेढ़ सौ दरख्वास्तों से भरी फाइल लेकर आया। उसमें पेंशन के कागज़ात भी थे। साहब ने फाइल पर का नाम देखा और निश्चित करने के लिए पूछा— "क्या नाम बताया साधुजी आपने?"

नारद समझे कि साहब कुछ ऊँचा सुनता है। इसलिए ज़ोर से बोले 'भोलाराम'।

सहसा फ़ाइल में से आवाज़ आई — "कौन पुकार रहा है मुझे ? पोस्टमैन है ? क्या पेंशन का आर्डर आ गया ?"

नारद चौंके। पर दूसरे ही क्षण बात समझ गए। बोले— भोलाराम! तुम क्या भोलाराम के जीव हो ?

'हाँ' आवाज़ आई।

नारद ने कहा — "मैं नारद हूँ। मैं तुम्हें लेने आया हूँ। चलो स्वर्ग में तुम्हारा इंतज़ार हो रहा है।" आवाज़ आई — "मुझे नहीं जाना। मैं तो पेंशन की दरख्वास्तों में अटका हूँ। यहीं मेरा मन लगा है। मैं अपनी दरख्वास्तें छोड़कर नहीं जा सकता।"

अभ्यास

शब्दार्थ :—

चकमा	=	धोखा
दरख्वास्त	=	निवेदन
मामला	=	बात
दिलचस्प	=	रुचिकर
मुहल्ला	=	നഗരത്തിന്റെ ഒരു ഭാഗം, a ward
फुर्सत	=	अवकाश, खाली वक्त
उचक्का	=	തെമ്മാടി, a wicked person
वैरागी	=	विरक्त, संन्यासी

प्रश्न :—

1. चित्रगुप्त परेशान क्यों थे ?
2. यमदूत का चेहरा क्यों विकृत हो गया था ?
3. नारद ने भोलाराम का मकान कैसे पहचान लिया ?
4. भोलाराम की स्त्री ने नारद से क्या प्रार्थना की ?
5. चित्रगुप्त ने पृथ्वी पर धडल्ले से होनेवाले किन-किन भ्रष्टाचारों की चर्चा धर्मराज से की ?
6. भोलाराम का जीव अपनी फाइल के कागज़ों में ही क्यों चिपक हुआ था ?

○

9

दूसरी सुबह

आलम का घर में आना उमाशंकर जी को खराब लगता था।

यह तो नहीं था कि वे पंडिताऊ स्वभाव के व्यक्ति थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा आधुनिक हुई थी, पैंट-कमीज़ पहनकर दफ्तर जाते थे। जाड़े में कोट के साथ जब-तब टाई भी लगा लेते थे.... हिचक होती थी तो यह नहीं कि वह विदेशी ड्रैस थी, बल्कि यह कि वे अफसर नहीं सिर्फ बड़े बाबू थे और टाई ..... पूजा-पाठ उमाशंकरजी का नियमित रूप से चलता था — स्नान के बाद पूरा एक घंटा। सभी त्योहार वे बड़े चाव से मनाते। जहाँ व्रत रखने का हो, वहाँ रखते। छुआछूत, अंधविस्वास की हद तक तो नहीं, पर हाँ मानते थे। उनके अनुसार अपने दैनंदिन जीवन में सफ़ाई रखने के लिए यह भी एक तरह की परहेजी व्यवस्था थी। कुल मिलाकर उनका जीवन तृप्ति और शांति का था। पुराना वह जो जीवन में अर्थ भरता था, और नया वह जो ज़रूरी था। इसलिए फाइल साहब के पास पहुँचाने या जब-कब किसी का कोई काम कर देने पर जो थोड़ा-बहुत ऊपर का बन जाता था, उसे भी उनके साफ़-सुधरे जीवन में जगह मिली हुई थी।

यह सब था, लेकिन आलम का घर आना.... उन्हें पसंद नहीं आता था। क्या उनके खून में भीतर कहीं अब भी बाप-दादों की पंडिताऊ बू मिली हुई थी.... या कि यह उनका कोई दबा हुआ निहायत व्यक्तिगत आक्रोश था। कोई चार-पाँच साल पहले उमाशंकरजी की तैनाती उस दफ्तर में हुई थी जहाँ उनके मातहतों में एक रहीम भी था। उमाशंकर सख्ती से काम करते और कराते थे। यही उनका रिकार्ड था। नये दफ्तर में भी आते ही उन्होंने प्रशासन में सफाई शुरू कर दी। मातहतों को कसना शुरू कर दिया। वक्त-वेवक्त उन्हें झाड़ देते। सखती सभी को तकलीफ देह होती थी, पर जहाँ दूसरे मातहतों का दबा विरोध बड़े ही स्वाभाविक ढंग से उठा, दबा दिया गया, वहाँ रहीम ने उसे एक नया रंग देकर फैलाना शुरू किया। जब चाहे शोर मचाता कि उसे इसलिए परेशान किया जा रहा है कि वह मुसलमान है, जबकि उमाशंकरजी के दिमाग में यह बात कभी आयी ही नहीं थी। वह सबके सामने एलान-सा करता होता कि उमाशंकर उसे कुछ कहकर तो देखें। सबके सामने उनकी मुखालफत करता...... धमकियाँ देता कि वह मामले को ऊपर ले जाएगा। उमाशंकरजी किसी एक बिंदू पर ढीले पढ़ते तो पूरे दफ्तर में जो चुस्ती वे लाना चाहते थे, वह नहीं आनेवाली थी। कई बार उन्होंने रहीम को अकेले में बुलाकर समझाया भी.... लेकिन वह बन्दा जैसे कसम खाये बैठा था। उमाशंकरजी जानते थे कि वह कामचोर था और मुसलमान होने को उसने कवच की तरह ओढ़ रखा था। न उमाशंकरजी ढीले पड़े और न रहीम ने ही अपना रुख बदला। छः महीने में ही उमाशंकरजी की तब्दीली दूसरी जगह हो गयी। उन्होंने तब अपने को इतना अपमानित महसूस किया था कि दफ्तर की बिदाई पार्टी भी स्वीकार नहीं की थी।

अपने मुसलमान सहकर्मियों को वे ज़्यादातर सशंकित पाते। ज़रा- ज़रा-सी बात में भेदभाव सूँघते हुए, हर बात पर अल्पसंख्यक होने की दुहाई देते हुए। सरकारी दफ्तरों में लोगों को इसी आधार पर ब्लैक मेल भी करते देखा..... क्यों कि सरकारी अफ़सर अपने खिलाफ़ भेद भाव की शिकायत से बेहद डरता था। यह सब लगातार देखते हुए और कुछ अपने संस्कारों के कारण भी उमाशंकरजी के मन में कुछ पूर्वाग्रह पल गये थे। अपने तमाम आधुनिक विचारों के बाबजूद एक दूरी थी जो मुसलमानों से बराबर बनी रहती.... कोई पास आता तो उससे दूर होने का मन करता, लेकिन अक्सर वे खुद को इस बात के लिए धिक्कारते थे।

आलम उनके यहाँ कुछ ज़्यादा ही आने-जाने लगा था..... यहीं कहीं से उन्हें सामान्य नहीं रहने देता था।

आलम आता और सीधा उमाशंकर जी के लड़के के कमरे में घुस जाता। उमाशंकर जी या उनकी पत्नी अगर बीच में पड़ गयीं तो उनसे एक औपचारिक-सी गुड़मार्निंग या गुड़ईवनिंग .... आदाब .... या नमस्ते नहीं। घंटों कमरे में घुसा रहता .... फिर रमेश और वह दोनों निकल जाते। कभी-कभी वे आलम को रमेश के जूते और कपड़े पहने भी देखते। एक दिन हुआ यह कि पत्नी ने उन्हें खाने के लिए आवाज़ दी। वे स्लीपर डाल हाथ-मुँह धोकर खाने की मेज़ पर पहुँचे। सामने देखा कि आलम भी उनके बच्चों के साथ खाने की मेज़ पर बैठा हुआ है। देखते ही उन्हें एक झटका-सा लगा और वे बाद में खाएँगे कहकर एकाएक यों लौट पड़े की सबी चौंक गये। आलम को भी कुछ गड़ा होगा। और शायद उसने वह भी सोचा हो जो उमाशंकर जी नहीं चाहते थे कि वह सोचे।

उनसे रहा नहीं गया।

उन्होंने उस दिन अपनी पत्नी को घेरा। कितने दिनों से दबाये हुए थे — "इस लड़के का इतना आना - जाना मुझे पसंद नहीं . . . वह अपने रमेश का वक्त बहुत बरबाद करता है। इसकी सोहबत रमेश को बिगाड़ देगी। यहाँ ऐसे पड़ा रहता है जैसे कि उसका ही घर हो। खाने पर क्यों बैठा लिया ....."

"मैंने कुछ नहीं कहा था, अपने आप आकर बैठ गया .... क्या मैं कह देती कि उठ जाओ।"

उमाशंकरजी पशोपेश में पड़ गये। पत्नी की दिक्कतें समझते थे । किसी की तरफ़ से आलम को कुछ कहा जाता तो उनके लड़के को खराब लगता । उस दिन वे मेज़ से लौट आये, इसपर ही रमेश का मुँह बन गया था । पन्द्रह-सोलह साल का लड़का पता नहीं क्या कह बैठे या कर बैठे ..... इसलिए हर पग पर सावधानी बरतनी थी, कुछ दिन और दबाये रहे ...... लेकिन मामला जब बढ़ता ही दिखा तो उन्होंने दफ़्तरी पैंतरा अपनाने की सोची। लड़के के साथ एक मीटिंग रखी । "देखो रमेश ..... तुम्हारा यह बारहवाँ दर्जा है । कम्पटीशन का ज़माना है । इसलिए इस वर्ष सब कुछ छोड़कर पढ़ो, खेलकूद, साथी-दोस्त सब कुछ छोड़कर .... यह जो तुम्हारे पास आता है .....।"

"आलम, मेरा क्लासफैलो है । हम साथ बैठकर पढ़ते हैं। डिस्कस करते हैं।"

"कितनी दूर से आता है ?"

"उसके डैडी का तबादला हो गया है — हॉस्टल में रहता है, अब । वहाँ उसकी पढाई नहीं हो पाती, खाना भी अच्छा नहीं लगता।"

उमाशंकरजी दाँत पीसकर रह गये। हॉस्टल में पढ़ाई नहीं होती, खाना अच्छा नहीं लगता .... तो वे क्या हॉस्टल के लड़कों के लिए एक और हॉस्टल अपने घर में खोल लें ?

"देखो बेटा ..... तुम दूसरों की पढाई की चिन्ता न करो। इस साल सिर्फ अपना देखो, आलम अपना देखे। उसे यहाँ आने को बहुत 'इनकरेज' मत करो।"

रमेश ने आँख उठाकर उन्हें देखा और चुप लगा गया .... जैसे कि वह उनकी संकीर्णता को पहले से ही समझता था, इससे बेहतर कि उनसे उम्मीद ही नहीं थी।

आलम के आने-जाने में कोई कमी नहीं हुई। वह छुट्टी के दिन आता, दिन भर रहता .... उनके यहाँ ही खाता-पीता पढ़ता - खेलता ..... शाम को चला जाता। छुट्टियों के अलावा हफ्ते के दूसरे दिनों में भी जब कभी रमेश के साथ सीधा कालेज से चला आता .... उसके बाद जो रमेश करता वह भी करता .... नहाना, रमेश के कपड़े लेकर पहनना, खाने पर बैठना और रमेश की चारपाई पर सो भी जाना। उमाशंकरजी दफ्तर रहते .... पर शाम को पत्नी से हाल-चाल मिलते। और तब कुढ़न भीतर तक उतर जाती। रमेश ने उनकी बात को यों हवा में उड़ा दिया था जैसे घर में उनका कुछ नहीं लगता था। वैसे उमाशंकर जी से ज़्यादा अब उनकी पत्नी परेशान थी, क्योंकि जिस दिन आलम आता उनके लिए एक अदद आदमी का काम और बढ़ जाता था। वे शाम को झुंझलाए हुए उमाशंकर से शिकायत करतीं। — 'वे अपने ही लड़कों-बच्चों का नहीं कर पाती हैं, अब हर

चीज़ दुगुनी चाहिए — दूध दो तो दो गिलास, फल दो तो दो जगह फिर उसके आने पर रमेश की माँगें बढ़ जाती हैं। कभी शिकंजी चाहिए तो कभी कॉफी। वे कहाँ तक करें।' उमाशंकर उन्हें समझाने की कोशिश करते कि आलम अपने माँ - बाप से पहली बार अलग हुआ है। हॉस्टल में अभी दोस्त नहीं बने होंगे, अकेला लगता होगा . . . थोड़े दिन में उनका आना अपने आप ही कम हो जाएगा।

पर वे जानते थे कि दरअसल पत्नी को नहीं खुद को ही समझा रहे हैं क्योंकि कुछ नहीं कर सकते थे। कुछ और करते लेकिन इधर रमेश कुछ नाराज़-सा रहने लगा था। पूरे क्लास में दोस्ती के लिए मिला तो एक आलम ही और उमाशंकर और उनकी पत्नी ने अपनी-अपनी तरह से इशारा किया फिर भी रमेश पर जूँ तक नहीं रेंगी। दिनोंदिन निकल जाते अब उनकी रमेश से बात भी नहीं होती थी। अभी जब वह उनके घर में तब यह हाल . . . . बुढ़ापे में जब उन्हें रमेश के पास रहना होगा तब क्या होगा . . . . ?

फिलहाल ऐसे ही चलने देना था। उमाशंकर जी इंतज़ार कर रहे थे उस दिन का जब रमेश और आलम दोनों में कुछ खट-पट हो जाय और आलम का आना-जाना अपने आप कम हो जाय।

दशहरे की छुट्टियाँ आ गयीं और उमाशंकरजी की पत्नी अपने बच्चों को लेकर मायके चली गयी। रमेश और आलम रह गये, इस वर्ष बोर्ड का इम्तहान जो था। पन्द्रह दिनों के लिए खाना आदि बनाने के लिए एक नौकरानी का इंतज़ाम कर दिया गया। आलम और रमेश की दिनचर्या में कहीं कोई फर्क नहीं आया था — कभी वे कमरे में पढ़ते, कभी हा-हा हू-हू करते, कभी छत्त की परछतिया पर बैठते तो कभी खेलने निकल जाते। उमाशंकर से किसी की बात ही नहीं होती थी, जैसे कि वे घर में थे ही नहीं या कि उनका काम सिर्फ पत्नी की नमौजूदगी में घर का इन्तज़ाम करना था . . . . उन दोनों के लिए।

उन्हीं दिनों दफ्तर से लौटने पर एक शाम उमाशंकर को तपतपी शुरु हुई और शाम होते-होते तेज़ बुखार चढ़ आया। घर में कोई नहीं था। ताप इतनी ज़ोर का था कि उमाशंकर बेसुध से चारपाई पर पड़ रहे। दुनिया घूमी जा रही थी। दिमाग में कोई दौड़-पदौड़ मची हुई थी और वे लगातार बड़बड़ा रहे थे। . . . . बड़बड़ाहट कभी बुदबुदाहट में दब जाती। तभी उन्होंने माथे पर ठंडक की लहर रेंगती - महसूस की। कोई भीगी पट्टी माथे पर रख रहा था। आंखें खुलीं तो विश्वास नहीं हुआ . . . . आलम था। कब आया, कब से पट्टियाँ भिगोकर-भिगोकर रख रहा था। . . . .

"अंकल, क्रोसीन नहीं है घर . . . . मैं बाज़ार से ले आता, पर आपको अकेले कैसे छोड़कर जाता . . . . . इसलिए सोचा भीगी पट्टियाँ लगाऊँ तब तक . . . . अब कैसा लग रहा है।"

उमाशंकर जी की आंखें भीगने को हो आयीं। आदमियत आखिर आदमियत है। उनके अपने लड़के अपने रमेश ने कभी ऐसा नहीं किया . . . . कहाँ है वह इस वक्त, पता भी नहीं।

घर में कोई दवा नहीं थी। उमाशंकर के यहाँ कभी इतना सिस्टम, नहीं रहा। जबतक रमेश नहीं आया, आलम पट्टियाँ रखता रहा। रमेश आया तो आलम ने रमेश को क्रोसीन लाने को भेजा। दवा देने के बाद उन्हें चाय पिलाने की चिन्ता आलम को सताने लगी। थोडी देर में वे दोनों रसोईघर में खटर-पटर करते रहते थे।

एक पल केलिए उमाशंकर जी में एक भयंकर खटक उठी . . . . अब आलम उनके रसोईघर में भी . . . .? लेकिन बात ऊपर नहीं चढ़ पायी। उन दो लड़कों का रसोईघर में मिलकर कुछ पकाना . . . . जैसे साथ-साथ पढ़ने और खेलने की दुनिया को वे आगे बढ़ा रहे थे, क्रमशः . . . . ।

रसोईघर में बर्तनों की खटर-पटर की आवाज़े, जैसे भोर के पहर मन्दिर में घण्टे बजते थे . . . . कोई उमाशंकर जी को जगा रहा था।

अभ्यास

शब्दार्थ :—

हिचक	=	संकोच
बू	=	गन्ध
निहायत	=	अत्यन्त
तैनाती	=	नियुक्ति
मातहत	=	अधीनता में काम करनेवाला
सख्ती	=	व्यवहार की कठोरता
एलान	=	घोषणा
मुखालफ़त	=	दुश्मनी
बन्दा	=	सेवक
चुस्ती	=	फुर्ती
तब्दीली	=	तबादला
झटका	=	धक्का
सोहबत	=	संग
अदद	=	गिनती
खट-पट	=	झगड़ा
फिलहाल	=	इस अवसर पर

प्रश्न :—

1. उमाशंकर जी की पोशाक कैसी थी ?
2. उमाशंकर जी की आदत कैसी थी ?
3. मातहतों को क्यों उमाशंकर जी के प्रति विरोध होता था ?
4. उमाशंकर जी और उनके परिवार वालों से आलम कैसा व्यवहार करता था ?
5. "बाद में खाएँगे" कहकर उमाशंकर जी क्यों एकाएक लौट पड़े ?
6. उमाशंकर जी ने अपनी पत्नी से आलम के बारे में क्या शिकायत की ?
7. उमाशंकर जी ने रमेश को क्या चेतावनी दी ?
8. आलम ने उमाशंकर जी की सेवा-शुश्रूषा कैसे की ?

○

SCERT
വിദ്യാഭവൻ

PRINTED BY THE MANAGING DIRECTOR
KERALA BOOKS AND PUBLICATIONS SOCIETY
KAKKANAD, KOCHI-682 030